॥ રામ ॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

मानस-सहज

क्योटो (जपान)

संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।।
संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना।।

।। रामकथा ।।
मानस–सहज

मोरारिबापू
क्योटो (जपान)
दिनांक : २०-८-२०१६ से २८-८-२०१६
कथा-क्रमांक : ७९९

प्रकाशन :
अप्रैल, २०१८

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क–सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम–पियाला

मोरारिबापू की रामकथा क्योटो (जपान) में दिनांक २०–८–२०१६ से २८–८–२०१६ दरमियान सम्पन्न हुई। झेन के सहज स्वभाव की पावन भूमि में बापू ने 'मानस–सहज' रामकथा का अनुष्ठान किया और 'रामचरित मानस' में सहजता का कहां–कहां और कैसा–कैसा बोध है उसका परिचय दिया।

'संकर सहज सरूपु सम्हारा।
लागि समाधि अखंड अपारा।।'

भगवान शंकर की सहजता का जिक्र करती यह मुख्य चौपाई के संदर्भ में बापू ने कहा कि शंकर की समाधि भी सहज है। शंकर का बैठना भी सहज है। शंकर का एकांत भी सहज है। और शंकर की उदासीनता भी सहज है। बापू का ऐसा भी कहना हुआ कि शिव की पूरी गंगधारा सहज है। और हम उसी प्रवाह के हैं। इसलिए यदि विशेष रूप में हम सहज होना सीख लें तो झेन का मर्म भी आत्मसात् कर सकते हैं।

बापू ने झेन विचारधारा को सिद्धांत के बजाय स्वभाव कहना पसंद किया क्योंकि सिद्धांत बांध देता है, स्वभाव अपना होता है। बापू ने झेन स्वभाव की सहजता की महिमा की और भगवान राम की सहज गतिविधि के संदर्भ में राम को आदि–अनादि झेन का दर्जा भी दिया, ''भगवान राम सहज है। राम झेनों के झेन है। आदि–अनादि झेन भगवान राम है। तुलसी के राम सहज बैठते हैं, सहज उठते हैं, सहज बोलते हैं, सहज मिलते हैं, सहज सोते हैं, सहज जागते हैं, सहज मुस्कुराते हैं।''

'सहज जीवनशैली का नाम ही झेन है।' जैसा सूत्रात्मक निवेदन करते हुए बापू ने कहा, सहजता जन्मजात होती है, आनुवंशिक होती है। जिन्स में उतरती है सहजता। और इसी सहज को झेन स्वभाव कहते हैं। जहां नियम है वहां झेन नहीं, जहां झेन है वहां कोई नियम नहीं। इतने सहज स्वभाव की बात है वो झेन है। और ऐसी सहजता की बात तुलसीदासजी ने एक सौ छः बार लिखी है। बापू ने कहा कि मुझे ये झेन विचार बहुत प्रिय है क्योंकि तुलसी से जुड़ा हुआ है।

वास्तविक दर्शन, सर्जनात्मक प्रवृत्ति, सावधानी, करुणामय अनासक्ति, प्रसन्नता, सादगी और चिरंतन यौवन जैसे झेन विचारधारा के सात बिंदुओं 'रामचरित मानस' के 'बालकांड', 'अयोध्याकांड', 'अरण्यकांड', 'किष्किन्धाकांड', 'सुन्दरकांड', 'लंकाकांड' और 'उत्तरकांड' जैसे सातों कांड में कौन–से पात्रों एवम् प्रसंगों में दृष्टिगोचर होता है उसका भी बापू ने साधार विवरण किया।

'मानस–सहज' कथा अंतर्गत यूं 'रामचरित मानस' के परिप्रेक्ष्य में झेन विचारधारा का दर्शन व्यासपीठ के माध्यम से व्यक्त हुआ।

– नीतिन वडगामा

मानस–सहज : १

भगवान महादेव सहज है, शिव की पूरी गंगधारा सहज है

संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।।
संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना।।

बाप! परम पवित्र मास श्रावण मास चल रहा है और झेन का जो सहज स्वभाव है उसकी पावन धरती क्योटो की इस भूमि पर नव दिवसीय रामकथा का अनुष्ठान करने के लिए हम इकठ्ठे हुए हैं तब सबसे पहले महादेव के चरणों में प्रणाम करते हुए, यहां की समस्त झेन चेतनाओं को प्रणाम करते हुए, इस रामकथा में आये हुए मेरे सभी आदरणीय वडील मुरब्बीगण, आप मेरे श्रावक भाई-बहन, मेरी व्यासपीठ के युवान फ्लावर्स, केवल और केवल निमित्तमात्र यजमान परम स्नेही नरेशभाई पटेल और उनका परिवार और विज्ञान के सदुपयोग के कारण दुनिया में जहां-जहां इस रामकथा का श्रवण श्रोता भाई-बहन कर रहे हैं, सभी को क्योटो की व्यासपीठ से मेरा प्रणाम।

आदरणीय मुरब्बी श्री गुणवंतभाई, आपसे बात हुई थी आपने ये विचार रखा था कि बापू, क्योटो में आपको एक कथा कहनी चाहिए। मुझे बहुत अच्छा लगा और आज इस विचार को वाहन बनाकर के हम यहां है। और गुणवंतभाई स्वयं अपने विचारों के साथ हम सब के साथ है। हमें बहुत आनंद है। मैं सोच रहा था कि इस कथा में कौन विषय को केन्द्र में रखकर 'मानस' का गायन करूं? व्यासपीठ पर आने के बाद मुझे जो प्रेरणा हुई, मन में जो बात आई सो आपके सामने पेश कर रहा हूं। मैं इस नवदिवसीय कथा में 'मानस-सहज' पर बोलने को जा रहा हूं।

मानस का अर्थ है मेरे भाई-बहन, हृदय। यद्यपि मानस का एक अर्थ मन भी है। लेकिन मानस का सत्य के निकट का जो अर्थ है वो है हृदय। और हम सब जानते हैं कि हृदय सहज हो तो ही हम तंदुरस्त रह सकते हैं। हृदय जब वो साहजिक गति में नहीं रहता तब आदमी नादुरस्त ही क्या, कभी-कभी निर्वाण भी प्राप्त कर लेता है। आइए, इस कथा में 'रामचरित मानस' ग्रंथ के अंदर सहजता का क्या-क्या बोध है उसका जीवन का आंतरिक विकास और विश्राम के लिए साथ में मिलकर संवाद करेंगे। मैं कभी साहस नहीं करता हूं, न मैंने किया है। दुआ कीजिए कि मैं कभी दु:साहस न करूं कि मैं आपके सामने कोई उपदेश कर रहा हूं। मेरा मेरे श्रोताओं के साथ कायम संवाद है; बातचीत है। एक गुफ्तगू है। अच्छा एकांत मिला है। कुछ बातें करें।

मैं कथा को महा एकांत समझता हूं। कथा एकांत है। इस एकांत का जो सदुपयोग कर लेता है, मुझे पता है कभी घाटे में नहीं रहता। बहुत अंदर का प्रकाश प्राप्त कर लेता है। यहां समूह के साथ बातचीत नहीं है,व्यक्तिगत बातचीत है। तो आइए, हम सब शिव की तरह सहज होकर, मेरे हनुमान की तरह सहज होकर और जिस झेन, मैं तो 'विचारधारा' भी कहने को इतना राजी नहीं हूं, झेन का जो स्वभाव है, वहां यदि हम कुछ विशेष सहजता को प्राप्त कर ले इसीलिए ये अनुष्ठान है, सहज। हम बहुत असहज होते जा रहे हैं। कारण कई हो सकते हैं।

भगवान महादेव सहज है, शिव की पूरी गंगधारा सहज है। और हम उसी प्रवाह के हैं। इसीलिए यदि विशेष रूप में हम सहज होना सीख लें तो मुझे लगता है, झेन का मर्म भी आत्मसात् कर सकते हैं। अभी आदरणीय गुणवंतभाई ने कहा कि झेन जो भी काम करे, ध्यान के रूप में करे; हर वस्तु ध्यानमय। और ध्यान का चरम शिखर शिव के समान ओर कोई दूसरा नहीं है। शिव का ध्यान फल नहीं है। हम ध्यान करते हैं तो भी फल चाहते हैं लेकिन शिव का ध्यान फललक्षी नहीं है। शिव का ध्यान रसलक्षी है। फल से भी उपर का एक दरवाजा है और वो है रस। इसीलिए 'रामचरित मानस' में गोस्वामीजी कहते हैं, 'मगन ध्यान रस...' ध्यान को गोस्वामीजी ने रस कहा। रस आदमी को जड़ होने नहीं देता है। कभी-कभी आदमी का ध्यान जड़ हो जाता है। कहीं ये न हो जाए कि ध्यान संवेदनाहीन हो जाए। इसीलिए गोस्वामीजी को अभिप्रेत है 'ध्यान रस।' हमारे शास्त्रों में लिखा है, 'उत्तमा सहजावस्था।' 'मध्यमा ध्यानधारणा।' सहज अवस्था। हमारे यहां एक योग का नाम है सहजयोग। 'साधो सहज समाधि।' कबीरसाहब का वक्तव्य है। आओ, नव दिन के लिए इस झेन मास्टरों की पावन भूमि पर हम और आप कुछ विशेष रूप में सहज हो सके और वो भी कोशिश करके नहीं, सहज। कोशिश की, सहजता गई!

तो महादेव के समान कोई सहज ध्यानी नहीं। और महादेव है त्रिभुवन गुरु। इसीलिए हम कहते हैं, 'ध्यानमूलं गुरु, पूजामूलं गुरु, मंत्रमूलं गुरु, मोक्षमूलं गुरु...' तो 'मानस-सहज' इस नवदिवसीय कथा का केन्द्रबिंदु रहेगा। हम नव दिन उसकी परिकम्मा करेंगे। हमारा स्वभाव मूलतः सहज ही रहा जीव के रूप में, ईश्वर के अंश के रूप में लेकिन खबर नहीं, गोस्वामीजी कहते हैं, ईश्वर की तरह सहजता ही जीव की होनी चाहिए।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

हम असहज हो गये हैं! असहजता विकृति का पर्याय है। असहज वर्तन, असहज विचार, असहज वाणी, असहज उठना, असहज बैठना, असहज खाना, असहज पीना ये विकृति है। ये अस्वस्थ चित्त का परिचय है।

मात्र मारी सादगीए एने शरमाव्या हशे।
वस्त्र सूतरनां पहेरीने हरि आव्या हशे।

कवि का नाम है भरत विंझुडा। जैसे बेकल उत्साहीसाहब कहते हैं-

सादगी शृंगार बन गई।
आईनों की हार हो गई।

ये सादगी, ये सहजता, ये झेन स्वभाव है। मेरे युवान भाई-बहन, झेन साहित्य बड़ा विपुल है लेकिन मुझे उसके जो पांच बिंदु है वो बड़े प्रिय लगते हैं। एक वस्तु याद रखे मेरे भाई-बहन, झेन में कोई धर्मग्रंथ नहीं है। कोई पोथी नहीं है। कोई शास्त्र नहीं है। इसका मतलब ये न करे धर्मग्रंथ, पोथी, शास्त्र, सद्ग्रंथ बेकार है। बिलकुल नहीं। मैं भी एक सद्ग्रंथ लेकर बैठा हूं। और नीतिन वडगामा के शब्दों में गाता रहता हूं-

पोथीने परतापे क्यां क्यां पूगिया!

हमारे नरेशभाई तो कहे कि बापू, वो तो आपके लिए होगा कि 'पोथीने परतापे अमे क्यां क्यां पूगिया!' हमारे लिए तो 'कथा ने परतापे अमे क्यां क्यां पूगिया।!' तो कोई ग्रंथ नहीं है झेन में जहां तक मेरा ख्याल है। साहब! मैं अधिकारी नहीं हूं उस पर बोलने का लेकिन मैं बोलूंगा जिम्मेवारी के साथ। जितना मेरी समझ में आया होगा इतना ही बोलूंगा। नो-बोल नहीं फेंकूंगा! पांच बिंदु है मेरी समझ में। और ये पांचों बिंदु मुझे पंचानन में मिलता है। पंचानन मानी महादेव। त्रिभुवन गुरु के पांच मुख होते हैं। फिर मैं कहूं, कोई गलत अर्थ न ले कि शास्त्र नहीं है इसीलिए कोई बात महान हो जाती है और जिस परंपराओं में शास्त्र है इसीलिए वो धारा निम्न हो जाती है, ऐसा अर्थ मत करना। शास्त्र की अपनी महिमा है। हमारे वेदों की महिमा कम है क्या? बाईबल की महिमा कम है क्या ईसाई परंपरा में? पवित्र

कुर्आन की, धम्मपद की, 'महाभारत', 'रामायण' सब ग्रंथ की महिमा है। लेकिन वो ही शास्त्र जब शस्त्र बन जाते हैं, जब नासमझों के हाथ में आ जाते हैं अथवा तो गलत अर्थघटन, गलत इन्टरप्रिटेशन शुरू हो जाते हैं, बिना चिंतन, बिना संशोधन, देश-काल के संदर्भ को भूल करके गलत अर्थ निकाले जाते हैं तो कभी-कभी आज के युग में भी हम महसूस कर रहे हैं कि शास्त्र शस्त्र बन जाते हैं! शास्त्र हस्तामलक होना चाहिए।-जगद्गुरु आदि शंकराचार्य। लेकिन शास्त्र मस्तिष्क से निकले और सीधा हाथ में आता है, वाया हृदय न हो तो वो शास्त्र, शस्त्र बनने में देर नहीं लगती। और मुझे कहने दो, जो शस्त्र, जो अणु, जो बम्ब लेकिन वो भी हृदय के द्वारा हाथ में आये, ऐसे शस्त्र को भी शास्त्र होने में देर नहीं लगती। किससे गुजरकर वो आया है वो महत्त्व का हैं-

एक पथ्थर काच तोडीने पछी नीचे पड्यो,
आवी घटनाथी जीवनना भेद समजाया हशे।
-भरत विंझुडा

दूसरे को तोड़नेवाला नीचे ही गिरता है। ऐसी-ऐसी घटनाओं से जीवन के भेद समझ में आये होंगे। ओशो भी कहते थे, दुनिया के इतिहासविद भी कहते हैं, समझदार लोग भी कहते हैं कि बिलग-बिलग धर्मों के ग्रंथों का ऐसा अर्थ निकाला गया तब यही धर्मों ने खबर नहीं कितना रक्तपात सर्जन किया है दुनिया में! विनोबाजी का वक्तव्य याद आता है कि युद्ध कभी दो धर्मों के बीच नहीं होता, दो अधर्मों के बीच में ही होता है।

तो शास्त्र गलत है ऐसा नहीं है। सबके अपने-अपने धर्मग्रंथ है। मुबारक है, स्वागत है। लेकिन पूर्वजों ने देखा है, आज हम देख रहे हैं, महसूस कर रहे है, बस, मैं तो क्योटो की भूमि से बुद्ध की चर्चा जब हम करने जा रहे हैं तब परमात्मा से प्रार्थना करें कि हमारी आनेवाली पीढ़ी को शास्त्र शस्त्र बन जाते हैं वो देखने का अवसर अल्लाह करे न प्राप्त हो। ऐसे समय में झेन ज्यादा प्रासंगिक है कि कोई ग्रंथ नहीं है। कोई सद्ग्रंथ होता है उसके पास सिद्धांत होते हैं। आप उसको छोड़ नहीं पाते हैं, उसके नियम है, रीतियां है, विधियां है। झेन इसीलिए प्रिय है और 'मानस' में इन पांचों बिंदुओं का तुलसी ने सुंदर तरीके से समावेश किया है इसीलिए मुझे इच्छा हुई कि मैं इस पर गाउं अपने निजानंद के लिए। झेन ये तो स्वाभाविक धारा है। उसमें कोई ग्रंथ न होने के कारण, शास्त्र न होने के कारण कोई सिद्धांत नहीं है। लेकिन कबीर की तरह विधिमुक्त विधान है। 'सिद्धांत' शब्द जरा आक्रमक है। कई लोग कहे, हम सिद्धांतवादी है। बचना! जरा हटके चलना! तो झेन स्वभाव के पास शास्त्र और ग्रंथ न होने के कारण कोई सिद्धांत नहीं है; विधिमुक्त विधान है। स्वाभाविक, सहज लगता है, ये फायदाकारक है। तुलसीदासजी का ग्रंथ यद्यपि ग्रंथ है लेकिन तुलसी कहते हैं, ये ग्रंथ नहीं है। तुलसी कहते हैं-

सदगुर ग्यान बिराग जोग के।

तुलसी कहे, 'रामचरित मानस' वो ग्रंथ नहीं है। वो तो ज्ञान-विराग का सद्गुरु है। जैसे हमारे यहां है; गुरु नानकदेव की परंपरा में गुरुग्रंथसाहब आये। और झेन परंपरा का दूसरा बिंदु जो में छूना चाहता हूं वो है सीधी गुरु और शिष्य के बीच में बातचीत। मास्टर और उसके छात्र के बीच में सीधी गुफ़्तगू। सीधी बातचीत। जो हमारे यहां उपनिषद में रहती थी। ये दूसरा बिंदु है। गुरु-शिष्य बातें करते रहते थे और घटना घटती थी।

क्योटो का एक झेन साधु, जिसका नाम था गुडो। बड़ा पहुंचा हुआ साधु है ये। उसकी चप्पल टूट गई थी। जूते ठीक नहीं थे तो जूते की दुकान पर जूते खरीदने के लिए जाता है। दिखाया उसने नाप का। किमत कही और उसको वो दे दिया। इतने में भारी वर्षा होने लगी। और जिसकी दुकान थी जूते की उसकी मालिक की पत्नी वहां थी। गुडो को इनके गांव पहुंचना था। उस स्त्री को उसने कहा कि मैं आज की रात आपके घर रह सकता हूं? भद्र स्वभाव की इस महिला ने कहा, मेरा सद्भाग्य! आप रहो। वो वहां रहा, खाया। विश्राम के लिए कमरा दे दिया। फिर स्वाभाविक है वो साधु इस स्त्री को पूछता है कि घर का मालिक, आपके पतिदेव कहां है? बोले, भगवन्, मत पूछो! इतनी शराब पीता है कि खतम कर दिया पूरा हमारा जीवन! बा-मुश्किल ये छोटी जूते की दुकान मैं चलाती रहती हूं, गुजारा करती हूं। तो वो घर में नहीं है क्या? बोले, नहीं, वो तो देर रात आता है लड़खड़ाता हुआ! साधु ने कहा कि मैं एक प्रार्थना करूं कि वो तुम्हारा पति शराब पी कर आता है तो किस कमरे में सोता है? मैं उस कमरे में बैठ सकता हूं? ठीक है। और मेरे पास जितने पैसे है, मैं आपको देता हूं और आप इस पैसे से अच्छी से अच्छी मिठाई और खाद्यपदार्थ, अच्छी से अच्छी शराब ले आओ, गुडो कहता है। और वो अच्छी से अच्छी शराब

और मिठाई ले आई। और आखिर पत्नी है न तो उसने मिठाई भी जो उसके पति को पसंद थी! नारी, नारी है यार! और शराबी के कमरे में बैठा हुआ गुडो ध्यान करने लगा। झेन स्वभाव का चरमलक्ष्य ध्यान है। तो ध्यान करने गुडो बैठ गया।

रात के एक-दो बजे वो शराबी आया। लड़खड़ाता अपने कमरे की और गिर पड़ा और देखा कि ये कौन? गुडो ने कहा कि मैं आपका अतिथि हूं। आज राज मुझे यहां रहना है। वो तो शराब में चूर था। लेकिन उसने कहा कि आप थोड़ा खा-पी ले, थोड़ा भोजन कर ले, आपकी पत्नी लाई है जो आपको पसंद है। उसने बहुत मिठाई खाई और अच्छी से अच्छी शराब भी पी। पीकर फिर सो गया। सुबह जागा। और गुडो चलने लगा तो शराबी का शराब उतर गया था। उसने साधु की शराब थोड़ी पी ली थी! सामीप्य की शराब थी ये। ये पदार्थ नहीं था, ये प्रेमसूत्र था। बोले, बाबा, मैं इतना बुरा आदमी फिर भी आपने मेरी इतनी इज्ज़त की। मेरा अब कर्तव्य बनता है कि गांव के बाहर तक आपको छोड़ने आउं। वो गांव के बाहर तक गुडो को छोड़ने जाता है। और जैसे वो गांव के बाहर आया तो गुडे ने कहा, अब लौट जाईये। बोले, कुछ कदम और आने दो न पीछे-पीछे। बोले, ठीक है। एक किलोमीटर और चला। फिर गुडो ने कहा, बहुत दूरी आ गई, अब लौट जाओ। बोले, महाराज, थोड़ा और आने दो। पांच-दस मिल पीछे-पीछे चला। और इतनी दूरी पर पहुंचने के बाद गुडो ने कहा कि अब लौट जा। तब उसने कहा, अब लौटने का कोई उपाय नहीं बचा है! झेन ऐसे समझाते हैं। वहां कोई दीक्षा दी, कंठी डाली, तिलक किया, फलां चक्र जागृत कर दिया! साधु ऐसे सामीप्य से कभी ये उतरे नहीं ऐसा नशा दे देता है। मैं जरूर जाता लेकिन अब मेरे पास बाकी कोई उपाय नहीं है। और आप मुझे छोड़कर जाओगे तो आप बेईमान माने जाओगे। अब मैं कहां जाउं? तब मुझे मीरां याद आती है; तब मुझे मेरे तुलसी याद आते हैं।

जो तुम तोड़ो पिया मैं नहीं तोडूंगी,
तेरी प्रीत तोडूं कृष्ण, कौन संग जोडूं?
तुम भये मोती कृष्ण, हम भये धागा,
तुम भये सोना, हम भये सुहागा।
तुम मेरे ठाकुर, मैं तेरी दासी...

मोती कितने भी कीमती हो लेकिन उसको धागा न मिले तो बिखर जाते हैं। हम भले जीव है! गये बीते है, जो भी है, बिना मोल के तेरे चेरे है। लेकिन सूत्र हम है। वर्ना मोती बिखर जाता है। गुडो से शराबी कहता है, अब लौटना मुश्किल है। 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते।' तो झेन स्वभाव की जो धारा है उसमें न तो कोई शास्त्र है। ये फायदारकारक है। और दूसरी बात गुरु-शिष्य की गुफ़्तगू है। मास्टर के साथ उसका छात्र, उसका विद्यार्थी बात करता है। घटना घटती है। तीसरी बात, शब्दों और अक्षरों से कम काम लिया जाता है। केवल अनुभव से ही बातें बनाई जाती है।

याद रखना मेरे युवान भाई-बहन, झेन स्वभाव में दो वस्तु बड़ी प्रधान है, एक, मौन और दूसरा ध्यान। बुद्धि की पांख उड़ने के लिए सूखी चाहिए लेकिन आंख भीगी चाहिए। बुद्धि तो कायम सूखी ही रहती है। ये उनका स्वभाव है। लेकिन आंख भीगी होनी चाहिए। वाणी में तेज हो और आंख में भेज हो। आदमी क्या कर नहीं सकता साहब! तो ये ध्यान और मौन दोनों परवाज़ पर झेन हमें भीतरी यात्रा करा सकता है; अंतरयात्रा करा सकता है। 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।' ये क्या है? ये अंतरयात्रा है। तुलसी कहते हैं-

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।
मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।।

तो एक तो शास्त्र नहीं है। दूसरी वस्तु, गुरु-शिष्य के बीच में बातचीत है, टोक है। तीसरी वस्तु, शब्द और अक्षरों का कम इस्तेमाल होता है। चौथा बिंदु है कैसे भी मास्टर अपने आश्रित को द्वंद्व से मुक्त करना चाहता है। फिर शंकराचार्यवाला अद्वैत आ जाता है। 'सभी सयाने एक मत।' जायें कहां? मूल में तो शंकर ही आकर खड़ा रहेगा। द्वंद्व से मुक्त करता है झेन। झेन की तो उडान है। वो हमें द्वैत से अद्वैत की ओर जानेवाली भीतरी यात्रा है। द्वैत के कारण हम दूसरों के बारे में बहुत अभिप्राय देते हैं। द्वैत के कारण हम दूसरों पर आक्षेप करते हैं। द्वैत के कारण हम दूसरों पर क्रोध करते हैं। गोस्वामी का सूत्रपात आप 'मानस'प्रेमी भाई-बहन हैं, जानते हैं, 'क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु'; क्रोध चाहता है, दूसरा चाहिए डांटने के लिए, चूक निकालने के लिए, आक्षेप करने के लिए। और मेरे युवान भाई-बहन, कभी भी किसी भी घटना पर तुरंत निर्णय मत लेना, प्लीज़! कुछ देर रुको। तुरंत निर्णय मत लेना। संवाद करो। पूरी झेन की जो स्वाभाविक धारा है वो ये बताती रहती है कि शब्द और अक्षरों की जरूरत नहीं। कहने की जरूरत पड़े तो अपने अनुभव से समझाओ या तो इतनी चेतना तुम में फाट-फाट हो तो उसको अनुभूति करा दो ताकि वो बोल न पाये। उसके पास केवल अश्रु के अक्षर के सिवा कोई अक्षर न बचे। तो ये चौथा बिंदु है मेरी समझ में। मुझे प्रिय बिंदु है इसीलिए मैं उसका जिक्र कर रहा हूं। शब्द की सीमा है। हमारी सीमा है। शब्द भी हमारे है। बहुत सीमित है।

तो न कोई ग्रंथ है इसीलिए सिद्धांत नहीं है। विधिमुक्त विधान है। गुरु-शिष्य के बीच में गुफ़्तगू है। बहुत नैकट्य है, बहुत सामीप्य है। और इतना सामीप्य हो जाता है गुरु-शिष्य के बीच में कि सामीप्य, सांनिध्य का रूप ले लेता है। सामीप्य का अर्थ है अभी कुछ दूरी है। और सानिध्य का अर्थ है हम बिलकुल डूब गये हैं। इसीलिए हमारी भारतीय परंपरा में लोग स्नान करते हैं तब कुएं का जल हो कि कोई हो लेकिन कहते हैं, 'जलैस्मि संनिधिं कुरु।' हमारे जल में गंगा ओतप्रोत हो जाये। गुरु-शिष्य का नैकट्य। शब्द-अक्षर की जरूरत नहीं। ग्रंथ नहीं। केवल महसूसी। और महसूसी करानेवाले बुद्धपुरुषों ने यहां मार खाया! जहर पीये! सुकरात का क्या गुन्हा था? और पांचवां और अंतिम पहलू है स्वाभाविक झेनधारा का पूरा का पूरा जानने के बाद इधर-उधर भटकना मत। 'एकान्ते सुखमास्यताम्।' जगद्गुरु आदि शंकर कहते हैं। फिर तू एक जगह बैठ जा। अब भटकाव बंद कर। अब तेरा रुकना ही तेरा पहुंचना है। और जब हम ऐसी बातें समझ नहीं पाते हैं और भटकते हैं तब कभी-कभी ऐसे बुद्धपुरुषों के विरुद्ध में हम खड़े हो जाते हैं। जैसे सुकरात को विष! ईसु को वधस्थंभ मिला! गांधी को गोली! बदायूंसाहब का एक उर्दू शे'र सुनियेगा, बड़ा प्यारा शे'र है साहब!

इन्हीं हाथों पे कालिख मल रहे हैं।
जिसकी बदौलत दीये जल रहे हैं।

ये हाथ न होते तो वायु तुम्हें कब का बुझा दिया होता! जिस बुद्ध ने हमारा चरण प्रज्वलित रखा उसी बुद्ध को गालियां मिली! कबीर को गालियां मिली क्योंकि भटकाव था! पूरा जाना नहीं। कबीर ने पूरा जाना था इसीलिए भटकाव मात्र बंद, 'कहे कबीर मैं पूरा पाया।' तुलसी कहते हैं, 'पायो परम विश्राम।' छांदोग्य उपनिषद कहता है, 'न अल्पेसुखं अस्ति।' हमको कम में सुख नहीं। हमें पूरा का पूरा परम चाहिए, अल्प नहीं।

तो ये पांच बिंदु जो है झेन के स्वभाव की धारा के वो मुझे 'मानस' में ज्यादा प्रमाण के साथ मिलते हैं। इसीलिए इस कथा में हम 'मानस-सहज' का गायन करेंगे। क्योंकि सबसे बड़ा झेनों का झेन मेरा महादेव है। जितना मेरे गोस्वामीजी ने सहज बताया है। बिलकुल सहज। और ध्यान देना, जो सहज है वो ही समर्थ है, जो असहज है वो नितांत असमर्थ है। बालक सहज है इसीलिए समर्थ है। यही थी रामकथा की पहले दिन की विषयप्रवेश की भूमिका। इस पायदान से हम आगे बढ़ेंगे। और पहले दिन की कथा में सदैव एक प्रवाही परंपरा का निर्वहण करना होता है कि सद्ग्रंथ का परिचय श्रोताओं को दिया जाय। हमारे श्रद्धाजगत में उसको माहात्म्य कहते हैं। माहात्म्य में क्या है कि उसके फल बताते हैं कि ऐसा करो तो ये फल मिलेगा! फल-बल में मत जाना। सीधा डायरेक्ट रस में जाना।

तो जब कोई ग्रंथ की महिमा का गायन पहले दिन होता है; एक परंपरा-सी लग गई। तो उसमें फलादेश होता है कि कथा का श्रवण करोगे तो तुमको ये फायदा होगा! उसमें सब नियम आते हैं। नियम बंधन है। व्रत में साहजिकता है। नियमावलि भी ठीक है। उस काल में जरूरी होगी। हमें फल नहीं चाहिए, हमें रस चाहिए। मैं जब 'मानस' का महिमागान करता हूं तो इसीलिए मैंने शब्द बदल दिया कि पहले दिन मैं वक्ता को जो ग्रंथ पर बोलना है उसकी माहात्म्य कहने का मतलब उसका वक्ता को परिचय प्रदान करता है कि तत्त्वतः ये क्या है। ये बताना है। ये 'रामचरित मानस' का परिचय देने की तो जरूरत नहीं है। आप सब जानते हैं। फिर भी, सात सोपान है। वाल्मीकि जिसको 'कांड' कहते हैं। गोस्वामीजी इसको सोपान कहते हैं। 'बालकांड' में प्रथम सोपान में

भगवान महादेव सहज है, शिव की पूरी गंगधारा सहज है। और हम उसी प्रवाह के हैं। इसीलिए यदि विशेष रूप में हम सहज होना सीख लें तो मुझे लगता है, झेन का मर्म भी आत्मसात् कर सकते हैं। ध्यान का चरम शिखर शिव के समान ओर कोई दूसरा नहीं है। शिव का ध्यान फल नहीं है। हम ध्यान करते हैं तो भी फल चाहते हैं लेकिन शिव का ध्यान फललक्षी नहीं है। शिव का ध्यान रसलक्षी है। फल से भी उपर का एक दरवाजा है और वो है रस।

गोस्वामीजी मंगलाचरण में सात मंत्र लिखते हैं। तुलसी पर ये बहुत चलता रहता है कि तुलसी को संस्कृत नहीं आता है क्योंकि तुलसी ने बहुत ग्राम्यगिरा में शास्त्ररचना की है। लेकिन नहीं, तुलसी के ये सातों सोपान के मंगलाचरण के मंत्रों को आज पंडित लोग खबर नहीं कितने संदर्भ में दिखते हैं! लेकिन तुलसी को इस श्लोक को लोक तक ले जाना था। जैसे भगवान बुद्ध लोकबोली में अपना पूरा संदेशा प्रदान करते हैं। महावीर ग्राम्यगिरा में, कबीरसाहब साधुकडी बोली में, ऐसे तुलसी संस्कृत के परमज्ञाता होते हुए लोकबोली में शास्त्र की रचना करते हैं। गाय गोरी हो कि काली हो दूध ही दे, लहू न दे। वैसे संस्कृत में कोई रामगुणगान गाये कि प्राकृत में गाये, निकलता है अमृत ही।

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।

और पांच सोरठे लिखे। देहाती भाषाओं का मानो एक शब्दकोश, एक एनसाईक्लोपीड़िया तुलसी ने रचित किया। पहले सोरठे में आप जानते हैं, गणेशजी की वंदना की। भगवान जद्गुरु आदि शंकराचार्य की पंचदेवों की जो पूजा की बात थी वो तुलसी परम वैष्णव होते हुए शंकरमत का सिद्धांत अपने 'रामचरित मानस' में पहले रखकर के सेतु बनाया। संवाद निर्मित कर दिया। गणेश, सूर्य, दुर्गा, शिव और विष्णु। सनातन धर्मावलंबीओं के लिए जगद्गुरु आदि शंकराचार्य भगवान ने पांच देवों की पूजा की बातें कही है। और मैं युवान भाई-बहन को यह कहकर आगे निकलूं कि गणेशपूजा आप करना। जरूर, कर सको तो करो। लेकिन गणेश विवेक के देवता है। विवेक का स्मरण रखना वो विनायक की पूजा है। प्रकाश में जीने का शुभ संकल्प करना, जहां तक संभव हो वो सूर्यपूजा है। विश्व के मंगल की कामना करके जीना वो रुद्राभिषेक है। शिवपूजा है। और अपनी मौलिक, विशेषणमुक्त गुणातीत श्रद्धा कभी टूटे नहीं वो दुर्गापूजा है। न अश्रद्धा, न अंधश्रद्धा; श्रद्धा। और अपना दृष्टिकोण विशाल रखना, संकीर्ण नहीं ये विष्णु की पूजा है मेरी समझ में। फिर तुलसी गुरु की वंदना करते हैं। ये मेरी व्यक्तिगत दृष्टि में 'मानस-गुरुगीता' है। गुरु की चरणधूलि से मेरी दृष्टि को विवेकमय करके मैं 'रामचरित मानस' का वर्णन करने जा रहा हूं। पहले नयनशुद्धि फिर वचन। पहले नेत्रशुद्धि फिर बोलने की बात। और जब गुरुकृपा से दृष्टि विवेकमय हो गई तो पूरा जगत उसको हरिमय दिखने लगा। इसीलिए गोस्वामीजी ने सबकी वंदना की। ब्राह्मण देवताओं की, साधुओं की, खलों की, सठों की, राक्षसों की, देवताओं की। सब पूरी सृष्टि जड़-चेतन गुण-दोषमय है ये जगत और हरिमय है ऐसा समझकर तुलसी सबकी वंदना करते हैं। क्योंकि दृष्टि जब विवेकमय होती है तो किसकी निंदा करें? किसकी उपेक्षा करें? और ऐसी वंदना करते-करते फिर आखिर में तुलसीजी इस वंदना प्रकरण में हनुमानजी की वंदना करते हैं-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

श्री हनुमाजी जो प्राणतत्त्व है, वायुतत्त्व है और वो हमारे जीवन में नितांत आवश्यकता है क्योंकि प्राण चाहिए। श्वास लेने के लिए वायु चाहिए। हनुमान बिनसांप्रदायिक है। क्योंकि इस्लाम धर्म के बंदे भी वायु से श्वास लेते हैं। हिंदु भी लेते हैं, शीख भी लेते हैं। तो हनुमंततत्त्व, तत्त्व के रूप में वो बिनसांप्रदायिक है। और मैं मेरे श्रोताओं को कहता रहता हूं कि हनुमानजी की कठिन-जटिल तंत्रपरक साधनाओं में कभी भी मत जाना। हनुमानजी के सौम्य स्वरूप का अनुसंधान करना। और तुलसी ने 'हनुमानचालीसा' देकर बड़ा अच्छा काम कर दिया कि कुछ न हो तो 'हनुमानचालीसा' का पाठ करो। इतना भी न कर पाओ तो इतना प्लीज़ करना कि जो 'हनुमानचालीसा' का पारायण करे उसकी निंदा न करना। उसकी आलोचना न करना; और वहां भी फल के लिए मत करना। यद्यपि तुलसी ने कुछ फल बताये हैं लेकिन हमारी मानसिकता फल की नहीं होनी चाहिए। फल तो क्या नहीं देगा? मधुर-मधुर फल देगा वो आदमी। लेकिन अपेक्षा नहीं। इच्छा नहीं। रामपद प्रीति के लिए, रामपदप्रीति मानी सत्यपद प्रीति, प्रेमपद प्रीति, करुणापद प्रीति के लिए करना।

येहि बिबाह सब बिधि कल्याणा।

शंकर के साथ विवाह हो जाये तो इसमें सब प्रकार कल्याण मानी जो सहज है उसके साथ जो जुड़ जाय उसका सब प्रकार कल्याण है। यही है 'मानस-सहज।' एक-दो पंक्ति 'विनयपत्रिका' से हनुमंत वंदना की-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।
बंदौ राम-लखन-बैदेही।
जे तुलसी के परम सनेही।।

आदि-अनादि झेन भगवान राम है

'मानस-सहज'; आइए, आगे बढ़ें। मेरे पास कुछ जिज्ञासायें भी है आपकी ओर से। इसमें दो जिज्ञासायें प्रमुख है। उसको मैं लेना चाहूंगा, आपसे बातें करना चाहूंगा। 'बापू, कल आपने कहा, झेन जो धारा है उसमें सिद्धांत नहीं है। उसमें विधिमुक्त विधान है। हमनें तो सुना है कि झेन धारा में भी कुछ सिद्धांत है।' आपने सुना है लेकिन सब सुना हुआ सच नहीं होता। यदि आपकी सिद्धांत प्रियता है तो मैं आदर करता हूं। लेकिन अब मैं यहां बोलने बैठा हूं तो आपको सुनना होगा। और आप अपनी बात रख सकते हैं। ये मेहफ़िल बिलकुल मुक्त मेहफ़िल है। यहां कोई पाबंदी नहीं है। यहां सब सहज है। मैं आपको ये कहने जा रहा था कि यहां आप पूछ सकते हैं सहज। ये मुक्त मेहफ़िल है। यहां कोई पाबंदियां नहीं है। स्वयं शिस्त जरूरी है। क्योंकि एक-दो शिकायत है जो मैंने निकाल दी। इतने कम लोग यहां बैठे हैं फिर भी एक-दो श्रोताओं ने शिकायत की है कि उसको पहली लाईन में बैठने को नहीं मिल रहा है! मैं फिर एक बार दोहराउं कि शिकायती चित्त आध्यात्मिक यात्रा में विफल हो जाता है। और ज्यादा निकटता अच्छी भी नहीं है। किसीको पहचानना, समझना इसीलिए एक निश्चित अंतर आवश्यक है। जिसको मैं कहता हूं, मेरी व्यासपीठ सबसे एक प्रामाणिक डिस्टन्स रखती है। हमारे त्रापजकरदादा कवि, अब नहीं रहे, उसने लिखा है-

समीप संताप छे झाझा,
मजा छे दूर रहेवामां।

लेकिन इतनी दूरी भी न हो कि हम देख ही न पाये। देखना बिलकुल निकट कर दिया सायन्स ने। आप घर में रहकर टी.वी.की स्क्रिन में सटकर देखिये। विज्ञान ने सुलभ कर दिया है। लेकिन कुछ डिस्टन्स आवश्यक है। मेरे युवान भाई-बहन, ध्यान देना, सहजता स्वधर्म है, असहजता परधर्म है। और इसीको कृष्ण ने कहा है, 'स्वधर्मे निधनं श्रेय:।' मृत्यु को

हमने भयावह माना है लेकिन जो सहज स्वधर्म है उसीमें जीयेगा उसके लिए मृत्यु भयावह नहीं है। लेकिन असहज जीयेगा उसके लिए 'परधर्मो भयावह।' सहजता स्वधर्म है। हमको सिद्धांतों ने परवश कर दिया है। इसीलिए 'झेन सिद्धांत' मैं नहीं बोल रहा हूं, 'झेन स्वभाव' कहता हूं। 'सिद्धांत' सायन्स का शब्द है। स्वभाव ये हमारी भीतरी अवस्था की एक अनुभूति है। सिद्धांत का इन्कार नहीं है। तो त्रापजकरदादा जब गाते थे-

समीप संताप छे झाझा,
मजा छे दूर रहेवामां।

और पांचों विषयों का दृष्टांत देते हैं त्रापजकरदादा-

सुगंधी वायु लहराता मधुकर मोह ना करजे,
कुसुमना केदखानाथी मजा छे दूर रहेवामां।
उगे आकाशमां भानु कमळनुं मुखडुं मलके,
रविने भेटवा करतां मजा छे दूर रहेवामां।
पतंगा ए नहीं समजे अगर समजे तो कही देजो,
दीपकथी दाजवा करतां मजा छे दूर रहेवामां।

तो किसीको समझने, परखने के लिए मेरे प्यारे भाई-बहन, थोड़ा डिस्टन्स जरूरी है। इसमें गिला क्या? शिकवा क्या? जहां जगह मिले बैठ जाओ। ये मुक्त मेहफ़िल है।

तो मूल बात, जो पूछा गया है, झेन धारा में कोई सिद्धांत नहीं है? तो यदि आपकी सिद्धांत में प्रियता है तो मैं स्वागत करता हूं। और कुछ विद्वानों ने उस पर संशोधन किया है, चिंतन-मनन किया है ऐसे विद्वानों ने कुछ सिद्धांत निकाले भी है। लेकिन मुझे कोई सिद्धांत नहीं दिखता है। ये मेरी आंख की कमजोरी भी हो सकती है। मुझे झेन स्वाभाविक लगता है। फिर भी आप यदि सिद्धांत प्रियता रखते हैं तो चलो मैं भी कह दूं, दो बात को सिद्धांत के रूप में मनीषियों ने पेश किया है, एक 'शून्यता' और दूसरा 'तथाता।'

ये झेन विचार के दो सिद्धांत माने गये हैं। एक शून्यता, जो पूरा बुद्ध से उतरा है। निपट अभाव; शून्य। और 'तथाता' जो बौद्ध परंपरा का शब्द है। उसको भी मैं सिद्धांत नहीं मानता। मैं व्यक्तिगत बोल रहा हूं प्लीज़! आपकी रुचि सिद्धांत में है तो मुझे कोई शिकवा नहीं है। लेकिन सिद्धांत बांध देता है। स्वभाव अपना होता है। सिद्धांत के द्वारा मिली वस्तु का सदुपयोग करो। लेकिन स्वभाव से बहुत भीतरी चीज की प्राप्ति होती है। बहुत फ़र्क है। इसीलिए झेन को मैं स्वभाव कहूंगा। एक स्वाभाविकता, सहजता। और सहजता है स्वधर्म, असहजता है परधर्म। स्वधर्म में मरना हितावह। परधर्म में जीना भयावह। और मुझे ये सहजधारा लगती है। इसीलिए मुझे ये झेन विचार बहुत प्रिय लगते हैं क्योंकि तुलसी से जुड़ा हुआ है। राम सहज है। मैं कितने प्रमाण दे सकता हूं। और साहब! ये भी एक योगानुयोग समझ लीजिए कि 'बालकांड' में सबसे ज्यादा 'सहज' शब्द का प्रयोग हुआ है। फिर 'अयोध्याकांड', 'अरण्यकांड', 'किष्किंधाकांड', 'सुन्दरकांड', 'लंकाकांड' और 'उत्तरकांड' में क्रमशः 'सहज' शब्द कम होते जा रहे हैं। इसका मतलब बालक सबसे ज्यादा सहज होता है। और जैसे-जैसे आदमी युवान होता जाता है, असहज हो जाता है। 'अयोध्याकांड' युवानी है। 'अरण्यकांड' थोड़ी प्रौढता है। आदमी थोड़ा-थोड़ा असहज होता जाता है। इसी मात्रा में 'मानस' में 'सहज' शब्द कम होता जाता है। भगवान राम सहज है। राम झेनों के झेन है। आदि-अनादि झेन भगवान राम है। प्रमाण-

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू।
रामु सहज आनंद निधानू।।

तुलसी के राम सहज बैठते हैं, सहज उठते हैं, सहज बोलते हैं, सहज मिलते हैं, सहज सोते हैं, सहज जागते हैं, सहज मुस्कुराते हैं। आपने सूरज को कभी मुस्कुराते देखा है? नहीं देखा है। हमनें तो नहीं देखा है कि सूरज मुस्कुरा रहा हो। लेकिन धन्य है तुलसी, धन्य है कवि मनीषी, जो सूरज की मुस्कुराहट नहीं लिखता लेकिन सूरज के सूर्य की मुस्कुराहट 'मानस' में लिखता है।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू।
रामु सहज आनंद निधानू।।

तो राम सहज है। ठीक है? कृष्ण सहज है, 'सहजं कृष्णक्रीडां सहजं वृषभानुजा।' कृष्ण की प्रत्येक क्रीड़ा संस्कृत वाङ्मय ने कहा, सहज है। और राधा का मुस्कुराना, रुठ जाना, गिला, शिकायतें जो-जो भी है सहज है। व्रज की प्रत्येक प्रवृत्तियां सहज है। यमुना के

प्रवाह को संस्कृत की वाक्‌धारा ने सहज कहा है। कृष्ण सहज है।

आज सुबह-सुबह नरेशभाई मुझे कह रहे थे कि बापू, तीस साल पहले एक चौपाई याद रह गई, वो आज रह नहीं पाया! रात दो बजे से जाग रहा हूं कि कब सुबह हो, बापू को सुनाउं! मैंने इशारे में कहा, बोल दो। उसने ये पंक्ति सुनाई-

कपटी कायर कुमति कुजाति।
लोक बेद बाहेर सब भाँति।।
राम कीन्ह आपन जबही तें।
भयउँ भुवन भूषण तबहि तें।

तुलसी लिखते हैं, कपटी, कायर, कुमति, कुजाति, लोक-बेद से बिलकुल निकाला गया लेकिन राम ने जब अपना बनाया तो मैं भुवन-भूषण बन गया। आदमी कैसा भी हो, 'सहजं कर्म कौन्तेय।' वहां तेरी सहजता देखी जाएगी, गुण-दोष देखा नहीं जाएगा। परमात्मा ने किस कपटी को 'मानस' में भुवन-भूषण बनाया? कौन है कपटी? कपटी है 'मानस' में मारीच। और कपटी मारीच को राम ने अपनाया। और कपटी मारीच स्वर्णमृग हो गया। यद्यपि कपट है लेकिन भूषण बन गया! सोना बन गया। लोहे से कांचन हो गया। क्योंकि राघव इनके पीछे दौड़े हैं। दुनिया राम के पीछे दौड़े! तुलसी कहते हैं, मायावी कपटी मृग के पीछे राम दौड़ रहे हैं और मारीच को परमप्रेमी का दर्जा प्राप्त हुआ और मारीच को भुवन-भूषण बना दिया! कपटी था लेकिन राम अपना लेते हैं तो आदमी कहां पहुंच जाता है! कायर कौन है? सुग्रीव। कायर का अर्थ है सभीत, भयभीत, एकदम डरा हुआ, थका हुआ; उसको हम कायर कहते हैं। 'मानस' में कायर है सुग्रीव। राम ने अपनाया तो भुवन-भूषण बन गया; 'किष्किंधा' का मालिक बना दिया। तुलसी कहे, स्वयं मैं कुमति हूं। मैं कुबुद्धि हूं लेकिन मेरे जैसे कुबुद्धिवाले को परमात्मा ने आज परम विश्राम की प्राप्ति करा दी। मैं कहां से कहां पहुंच गया! मेरे समान कुमति कौन है? लेकिन तुलसी विश्ववंद्य है आज, निःशंक। तुलसी को संतों ने कलिपावनावतार कहा है। कुजाति है शबरी; लोक-बेद से बहिर है। और प्रभु ने अपना बनाया लिया तो शबरी की गाथा के बिना राम अधूरा दिखता है।

मैं एक बात आपको दिल की बता दूं कि राम अहल्या का उद्धार न करते, राम यदि केवट के अटपटे बचन को अच्छा अर्थ निकालकर उनके साथ बाप और बालक की तरह बात न करते, राम यदि कायरों को, भागे हुए को सुरक्षा न देते, राम शबरी को अपनाकर जगत में स्थापित न करते तो मोरारिबापू रामकथा न कहता! यस, मैं रामकथा कभी नहीं कहता। राममंदिर में इसीलिए सुबह-शाम ज़ालर-नगाडे बजते हैं क्योंकि राम ने कपटी को, कुमति को, कायर को, कुजाति को अपने जीवन का शृंगार बनाया है। मैं दिल की बात आपने सामने रखता हूं। मैं 'मानस' पर हाथ रख के कहता हूं, मोरारिबापू 'रामायण' न गाय! दूसरे गाये, गाय। किसी में कुछ बुराईयां है तो बस त्यागना! स्वीकार करो। 'रामचरित मानस' स्वीकार का शास्त्र है। यहां सबको स्वीकारा गया है। तो कुजाति शबरी है। लोक-बेद बहिर ये कौल-किरात, जो आदि गिरि वनवासी लोग जिसके साथ कभी किसी ने मुस्कुराते बात नहीं की उसको राम जब अपना बना लेते हैं तब वो भुवन-भूषण बन जाते हैं। युवान भाई-बहन, बहुत प्यारा शे'र आपके हवाले करता हूं-

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।
लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।
- दीक्षित दनकौरी

कभी निष्फलता मिले तो भी जीना सीख लो। ये दुनिया तो द्वेषात्मक है। परीक्षा में नापास होते हैं तो लोग आपघात करने लगते हैं! थोड़ा जीवन ठीक नहीं चलता है, डिप्रेस हो जाते हैं! सहज रहो, सहज रहने दो। स्वभाव को परमात्मा भी बदल नहीं सकता। कभी भी बदलेगा तो कोई संतपुरुष बदल सकता है। ईश्वर बदल सकता तो कालीनाग को अमृतमय कर सकता था लेकिन नहीं कर पाया! सुधारना कठिन है! मारना आसान है! लेकिन प्रभु कहते हैं, मार सकता हूं। स्वभाव को सुधारना तो संतों का काम है; बुद्धपुरुषों का काम है; झेन साधुओं का काम है। और आखिर शे'र दीक्षित दनकौरीसाहब का-

अच्छा किया कि तुमने गुनहगार कह दिया,
मशहूर हो गया हूं मैं बदनामीयों के साथ।

तो सहजता स्वधर्म है। कैसे भी हम है, है। जगद्गुरु शंकर कहते हैं, 'मत्सम पातकी नास्ति।' क्या करोगे? 'हमने कह तो दिया हम बुरे लोग हैं।' सूफ़ी कहते हैं-

तेरी पाकीज़गी पे न तोहमत लगे,
हमसे दामन बचा हम बुरे लोग हैं।

हे गोविंद! हम तो कपटी, कायर, कुमति, कुजाति है। तू कुबूल कर इसमें तेरी प्रभुता है। तुलसी शास्त्र समापन में कहते हैं, मेरे समान कोई दीन नहीं और तेरे समान दीन हितकारी कोई नहीं है। जो आदमी सहज जीना सीख ले, बात बन जाये। हम सहज नहीं रह सकते हैं। झेन कथाओं में, झेन की बातों में सहजता की बड़ी महिमा है। सावधानी की बहुत बड़ी महिमा है। तो राम है सहज। मेरा कृष्ण है सहज। कृष्ण तो राम से भी अधिक सहज है। हां, ये तो कहना पड़ेगा। तो कृष्ण ज्यादा सहज है। वो तो जो मूड़ में आया आदमी नाचता है, गाता है। और शिव इससे भी ज्यादा सहज है-

संकर सहज सरुपु सम्हारा।
लागि समाधि अखंड अपारा।।
संभु सहज समरथ भगवाना।
एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना।

ऐसे सहज से विवाह कर लेना। वहां तो उमा के लिए ये पंक्ति है कि उमा का विवाह ऐसे शिव के साथ हो जाये तो सब प्रकार भला हो जाये। लेकिन शिव केवल उमा का थोड़ा है? सब जीव का शिव है इसीलिए ऐसी सहजता से विवाह हो जाये इसमें हमारा सब प्रकार से कल्याण है। तो राम है सहज। कृष्ण है सहज। शिव है सहज। राम मानी सत्य। सत्य सहज होना चाहिए। सत्य के ट्यूशन नहीं होते। उसके क्लासिस नहीं खोले जाते। और प्रेम भी सहज होना चाहिए। कृष्ण प्रेम है। राम सत्य है। और करुणा शिव है। करुणा सहज होनी चाहिए। झेन परंपरा का एक सूत्र है, करुणा आसक्तिमुक्त होनी चाहिए। करुणा करो, लेकिन जिस पर करुणा की है उस पर आसक्ति भी न रखो वरना बंध गये! झेन स्वाभाविक जो धारा है उसका एक सूत्र ये भी है, झेन परंपरा कहती है, क्षण में जी लो। ये क्षण गई, गई! तुम्हारी नहीं रही। एक क्षण में वस्तु अतीत में जा रही है। नया आमंत्रण आ रहा है। लेकिन दोनों के बीच में एक क्षण है जिसमें जीने की बात झेन करते हैं। फिल्म का एक गीत है-

आगे भी जाने न तू,
पीछे भी जाने न तू,
जो भी है, बस यही एक पल है।

तो क्षण में जीने की स्वाभाविक धारा का नाम है झेन स्वभाव। हम असहज होते जा रहे हैं। वो ही अधर्म है, वो ही परधर्म है। तो यदि आपकी सिद्धांत प्रियता है तो 'शून्यता' और 'तथाता।' लेकिन मैं उसको सिद्धांत के रूप में नहीं देखता। ये भी झेन भावप्रवाह है।

दूसरी बात पूछी गई है कि अनुभव और अनुभूति क्या है? मैंने कल स्पष्टता कर दी कि अनुभव वो है जो कहा जाय, शब्दों में डाला जाय। अनुभूति वो है जो कही न जाय, शब्दों में डाली न जाय। अनुभूति को कहना मुश्किल है। शायद कोई पहुंचा हुआ फ़कीर संकेतों में बता दे तो बात ओर है। अनुभव इन्द्रियों का विषय है, अनुभूति आत्मा का विषय है। आपने गरम वस्तु को छूआ, स्पर्शेन्द्रिय बताती है गरम वस्तु है। ये अनुभव सदैव इन्द्रियों के द्वारा होता है। अनुभूति इन्द्रियों का विषय नहीं है मेरे प्यारों। ये आत्मानुभूति है इसीलिए हमारे यहां तुलसीदासजी जब बोलना है तब कहते हैं, 'आतम अनुभव।' लेकिन हमारे यहां मूल शब्द जो है वेदांत का वो है 'आत्मानुभूति।' अनुभव नहीं, अनुभूति। और फिर मैं एक बार शंकरावतार आदि जगद्गुरु आदि शंकर को याद करूं। उसने एक ग्रंथ लिखा उसका नाम है 'अपरोक्षानुभूति।' जटिल-क्लिष्ट ग्रंथ है वेदांत का लेकिन थोड़ी गुरुकृपा से जिसका प्रवेश हो जाये। पूरा अद्भुत ग्रंथ है! और शंकराचार्य लिखे फिर तो गज़ब कर देता है! ये बत्तीस साल के युवान ने देश को जो इज़्ज़त बक्षी है! हां, कितने अवतारों का काम आदि जगद्गुरु ने कर दिया है! बड़ा प्यारा ग्रंथ है; बृहद ग्रंथ है। क्लिष्ट है बहुत लेकिन कुंजी हाथ में आ जाये तो बहुत आनंद आयेगा, 'अपरोक्षानुभूति।'

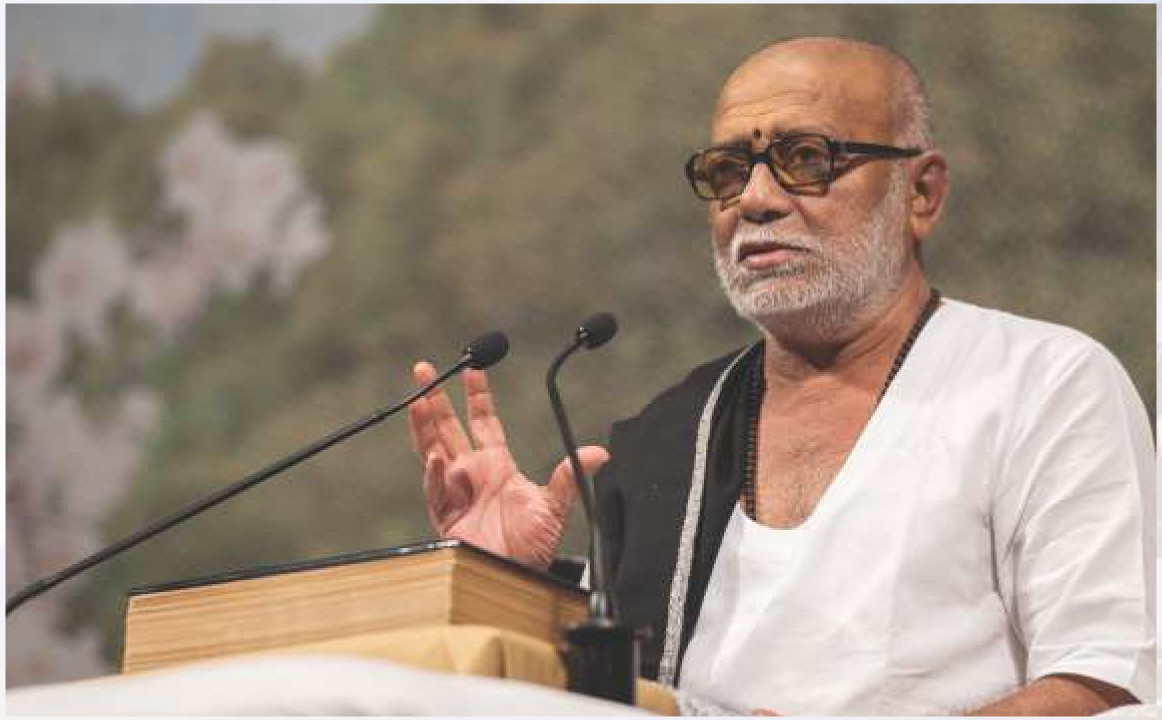

तो झेन का भाव सहज है, स्वाभाविक है। भद्रायुभाई ने ही कल एक ओर झेन कथा दी थी इसमें मुझे ये बहुत अच्छी लगी कि चार झेन साधु ने अपने मठ में एक सप्ताह का मौन लिया। निर्णय किया। लेकिन हम मौन रखने का संकल्प करते हैं वहां फिर सहजता गई! क्योंकि वहां संकल्प आ गया! संकल्प में कर्ताभाव आ गया। कर्ताभाव आया कि बहुत से उसके अनुगामी आ ही जाते हैं। एक ब्रिज बना दो न तो चींटी भी जाएगी, हाथी भी जाएगा। क्योंकि रास्ता बन गया। शिवसंकल्प अच्छा है; वैदिक वस्तु है। 'तन्मैमन: शिवसंकल्पमस्तु।' और शिवसंकल्प में भी अहंकार की थोड़ी उद्घोषणा है। शिव अहंकार के प्रतीक है। वैश्विक अहंकार का नाम शिव है। तुलसी कहते हैं, 'अहंकार सिव'; ये अंत:करण चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त अहंकार जो हमारा है वैसे वैश्विक एक अंत:करण हमारा है उसमें मन चंद्रमाँ है। बुद्धि ब्रह्मा है। चित्त विष्णु है और भगवान शंकर अहंकार है।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।

कहीं भी संकल्प, प्रतिज्ञा ये सब अच्छी वस्तु है लेकिन कहीं न कहीं कर्तापने का डर है उसके पीछे। और विकार बड़े चालाक होते हैं! तो मेरे भाई-बहन, विकार अनुगमन करता है। शिव संकल्प भी अच्छा है हम जैसे संसारीओं के लिए कि कल्याणकारी संकल्प हो, अकल्याणकारी न हो। फिर भी शिव अहकंार के प्रतीक होने के कारण वहां थोड़ा अहंकार का प्रश्न उठता है। स्वाभाविक हो, सहज हो।

तो चार साधुओं ने झेन मठ में निर्णय लिया एक सप्ताह का मौन रखने का। 'भगवद्गीता' ने तो मन की प्रसन्नता को मौन कहा है। बोलना बंद कर दो उसको मौन कहा ही नहीं है। तो चार साधुओं ने मौन रख लिया। अभी तो मौन की शुरुआत हुई इसमें वो मोमबत्ती बुझ गई! एक मौनी साधु ने कहा, मोमबत्ती बुझ गई! दूसरे ने कहा, हमको बोलना नहीं था ना? तीसरे ने कहा, एय! हमनें मौन तोड़ दिया! चौथे ने कहा, आप तीनों बोले, मैं तो कुछ बोला हीं नहीं! क्योंकि उसके पीछे कर्तापने का बोज था। होने दो। हमारा जातुष कहता है कि नदी को किसी ने जीवन की व्याख्या पूछी तो कुछ बोली नहीं, बह गई। दुनियाभर का जवाब मिल गया कि उसीको जीवन कहते

हैं, 'चरैवेति चरैवेति।' तो बाप! उसकी दो जिज्ञासा में मेरी जितनी अक्ल काम कर रही थी कि सिद्धांत प्रियता है तो चलो 'शून्यता' और 'तथाता' दो किनारे के बीच में झेनधारा को बहाओ। मैं इस विचार के अनुकूल नहीं हूं। फिर भी आप की रुचि है, इस दो किनारे के बीच में बहो। और दूसरा, अनुभव और अनुभूति में अनुभव इन्द्रियप्रधान है, अनुभूति हमेशां आत्मप्रतीति का विषय है, आत्मानुभूति का विषय है।

मुझे कहने दो, 'रामचरित मानस' की आत्मा सहज है। प्राण नहीं, आत्मा। भूरि-भूरि मात्रा में तुलसी ने, 'सहज सनेह', 'सहज प्रेम', 'सहज सुंदरता', 'सहज पवित्रता', 'सहज बैर' कहा है। कोई इन्कार नहीं कर सकते ऐसी सहजता के क्षेत्र गोस्वामीजी ने खोल दिये हैं। और झेन धारा के साथ उसका बहुत मेल बैठता है। इसीलिए स्वाभाविक रूप में गुरुकृपा से ये विषय चुना गया है।

आइए, कथा के क्रम में थोड़ा आगे बढ़ें क्योंकि आधार तो मेरा 'मानस' है। तो कल हमनें इस सहज गति में रामकथा के क्रम में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की थी। जो नितांत आवश्यक है। हमारे शरीर में पंचप्राण है। ये पंचप्राण ठीक रहने चाहिए तब शरीर जीवित रहता है। 'रामचरित मानस' के भी पंचप्राण है और पंचप्राणों को भी जीवित रखने का काम श्री हनुमानजी ने किया है इसीलिए वो वायुपुत्र है। और हमारे 'मानस' के मनीषिओं ने गिनाकर के बताया है कि 'रामचरित मानस' के पंचप्राण है- एक भरत। दूसरे लक्ष्मण। तीसरे सुग्रीव। चौथे जानकीजी। पांचवें बंदर-भालू। ये पंचप्राण है। और इन पांचो पर प्राण संकट आया है। सीता, लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव और बंदर-भालू पांचों के प्राण जाने की तैयारी थी तब पांचों की प्राणरक्षा श्री हनुमानजी ने की है। तो श्री हनुमानजी महाराज पंच प्राण के रक्षक माने गये हैं 'मानस' में। इसीलिए वंदना प्रकरण में हनुमानजी की वंदना की। गोस्वामीजी ने उसके बाद भगवान के इस अवतार में जो साथी बनकर आये बंदर-भालू इन सबकी वंदना की। और उसके बाद जो कथा के मुख्य नायक है सीता-राम उसकी वंदना करते हैं। जानकी और राम की वंदना की और गोस्वामीजी ने कहा कि गिरा-अर्थ के समान, जल-तरंग के समान कहने में भिन्न होते हुए अभिन्न है ऐसे सीता-राम तत्त्वत: एक ही परमात्मा के ये दो भाग है लीलाक्षेत्र के लिए। ये सीताराम के अखंड, अभिन्न रूप को प्रणाम किया।

वाल्मीकि तो सीता के चरित्र को ही महान कहते हैं। वहां राम गौण है। यद्यपि 'मानस' में सीता की महिमा अद्भुत गाई है तुलसी ने। पहले सीता की ही वंदना की। राम की तो 'पुनि मन बचन...' उसके बाद राम की। पहले जानकी की ही वंदना की। फिर भी तुलसी के केन्द्र में बिलकुल फोकस यदि करें तो राम है। वाल्मीकि के केन्द्र में, फोकस में जानकी है। वाल्मीकि 'रामायण' और 'मानस' में तुलनात्मक दृष्टि से देखे तो बहुत भिन्न-भिन्न है और अभिन्न भी है। मेरा मनोरथ है, अल्लाह पूरा करे। कभी इन दोनों 'रामायणों' का तुलनात्मक रूप लेकर एक कथा कहनी है कि वाल्मीकि का दृष्टिबिंदु क्या है और तुलसी का क्या है? और जो नाभाजी कहते हैं कि-

कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।

बौद्धिक रूप में कोई कुबूल करे न करे। सबकी अपनी-अपनी स्वतंत्रता है लेकिन फिर भी मुझे तो जलन मातरीसाहब का आश्रय लेना है कि-

श्रद्धा नो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?
कुर्रानमां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

श्रद्धा श्रद्धा है। मेरा तो एक छोटा-सा सूत्र है कि भरोसा ही भजन है। बस! आपणो भोजो भगत केटली मोटी वात कही गयो के-

भोजल के भरोसो जेने,
त्रिकमजी तारशे एने।

भजन मानी क्या? भरोसा। लाख माला हम घुमाये, गाये, बैठे, पूजापाठ करे लेकिन भरोसा नहीं है तो! तो सवाल भरोसे का है। भरोसा ही भजन है। तुलसी का मंतव्य-

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास।।

तो सीता-राम की वंदना की कथा के क्रम में। वंदना प्रकरण में आगे का प्रकरण है नाम महाराज की वंदना का। नाम की महिमा तुलसीदासजी ने नव दोहे में लिखी। नव दोहे एक तो पूर्णांक है यानी नाम की महिमा

तुलसी ने अपनी पूर्ण शक्ति लगाके अनुभव के साथ रखी। तुलसी कहते हैं, रघुवीर के कई नाम है, लेकिन इनमें जो रामनाम है उसको मैं वंदन करता हूं। जो अग्नि, सूर्य और चंद्र का कारण है। 'र'कार, 'अ'कार और 'म'कार ये सूर्य, चंद्र और अग्नि का बीज माना गया है। ये वैज्ञानिक सत्य है, शास्त्रीय सत्य है। उसके हेतु है। अग्नि कचरे को जला देता है। सूर्य अंधेरे को नष्ट कर देता है, भगा देता है। चंद्रमा चांदनी और शीतलता देता है। भगवान रामनाम कृषानु का अग्नि बीजतत्त्व होने के कारण हमारे भीतर के जो कषाय है, दोष है इन कचरे को जलाकर भस्म कर देता है। रामनाम सूर्य का हेतु है, बीज है इसीलिए रामनाम सूर्य की प्रभा बनकर हमारे भीतरी भ्रम और मोह को मिटा देता है। रामनाम चंद्र का भी बीज है इसीलिए रामनाम हमारे भीतर को उजास से भर देता है, शैत्य प्रदान करता है।

एक वस्तु याद रखना मेरे भाई-बहन कि किसान को काली मिट्टी मिल जाये वो उनका भाग्य है। कहते हैं, काली मिट्टी फलद्रूप होती है। लेकिन काली मिट्टी में बोने का एकदम जातिवान बीज मिल जाये वो बड़भाग है। और इस बीज पर सम्यक् रूप में वर्षा हो जाये वो परमभाग है। और फिर फसल पक जाये वो अतिशय बड़भाग है। और फसल पकने के बाद कोई साधु का दर्शन हो जाये वो परम सौभाग्य है। और ऐसे साधु का दर्शन करना है तो एक विद्या से गुजरना चाहिए। यद्यपि वो कृपा डिपेन्ड है। वहां कोई साधन काम नहीं आते हैं। फिर भी कुछ करना होता है। जैसे बड़े-बड़े एरपोर्ट में एक्सिलेटर पर हम खड़े हो जाये तो चलना नहीं पड़ता है। ठीक है ना? लेकिन जल्दी इमिग्रेशन कराना हो तो पहले तो थोड़ा उस पर भी चलो तो जल्दी पहुंच जाते हैं। कृपा की गति में भी अपना थोड़ा पुरुषार्थ जुड़ा जाये तो जल्दी पहुंच सकते हैं। इमिग्रेशन जल्दी में पास हो सकते हैं। हमारी ओर से पुरुषार्थ चाहिए। तो तीन वस्तु युवान भाई-बहन, याद रखना, ये सेलफोन जो है टेलिफोन, मन मोबाईल है इसमें जो डिलिट करने जैसा आ गया वो डिलिट कर दो। जो आवश्यक नहीं है उसको छोड़ दो। अथवा तो दूसरा ऐसा हो उसको डिलिट कर दो। और 'फलां आदमी ने बहुत अच्छा काम किया।' उसको सेव करो। उसको रखो कि करने जैसी प्रवृत्ति है। और इससे भी कुछ बुद्धपुरुष के वचनामृत मिल जाये उसको फोरवर्ड करो। उसको भेजते जाओ, भेजते जाओ, भेजते जाओ। मन का मोबाईल ठीक रहने से साधु दर्शन में आनंद आता है। तो ये परम सौभाग्य की बात है-

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।
सतसंगति संसृति कर अंता।।

तो प्रभु का नाम कचरे को जलाता है, अंधेरे को मिटाता है, शीतलता प्रदान करता है।

बरसा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास।।

तो परमात्मा का नाम प्रणव रूप है, ॐकाररूप है। सूर्य, चंद्र और अग्नि तीनों रामनाम के बिना निष्प्राण हो जाते हैं, अर्थहीन हो जाते हैं। इसीलिए 'हेतु कृसानु भानु हिमकर को।'

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

कहां तक रामनाम की महिमा गाउं? स्वयं राम भी अपने नाम की महिमा गाने बैठ जाये तो राम भी नहीं गा सकते। ये कलियुग है। न इसमें ठीक से कर्मयोग होगा; न इसमें ठीक से ज्ञानयोग होगा; न इसमें ठीक से भक्तियोग होगा।

राम नाम अवलंबन एकू।

मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, प्रभु का नाम लो। जो आपका इष्टदेव हो, जिसमें आपकी श्रद्धा हो। अल्लाह कहो, जिसस कहो, बुद्ध कहो, जो कहना चाहो। रुचिभेद के कारण कोई भी नाम लो क्या फ़र्क पड़ता है? लेकिन कलियुग में एकमात्र प्रभु का नाम हम जैसों का आधार है।

सिद्धांत बांध देता है। स्वभाव अपना होता है। सिद्धांत के द्वारा मिली वस्तु का सदुपयोग करो। लेकिन स्वभाव से बहुत भीतरी चीज की प्राप्ति होती है। बहुत फ़र्क है। इसीलिए झेन को मैं स्वभाव कहूंगा। एक स्वाभाविकता, सहजता। और सहजता है स्वधर्म, असहजता है परधर्म। भगवान राम सहज है। राम झेनों के झेन है। आदि-अनादि झेन भगवान राम है। तुलसी के राम सहज बैठते हैं, सहज उठते हैं, सहज बोलते हैं, सहज मिलते हैं, सहज सोते हैं, सहज जागते हैं, सहज मुस्कुराते हैं।

पतित को पावन करना वो रामकथा है

आज कथा के आरंभ में प्रतिदिन की भांति आदरणीय बापा ने कल की कथा का सारांश अंग्रेजी में व्यक्त किया। बापा इंग्लिश बोलते हैं तो मुझे समझ में बहुत आता है। कल का पूरा प्रवचन मैं दावा तो नहीं कर सकता लेकिन नाईन्टी पर्सन्ट बराबर समझ गया। ये दर्शन, ये भी अच्छा संचालन करता है। लेकिन उसका इंग्लिश पकड़ना मुश्किल है! ये अपने उच्चार से बोलता है। यहां जो पढ़े हैं। ये सभी नई-नई चेतनाएं बहुत आगे आ रही है उसका मैं स्वागत करता हूं। केवल धर्मक्षेत्र में ही आगे आये ये मेरी मांग नहीं है। मेरी मांग है जो पुन्यमयी कोई भी क्षेत्र हो जिसमें जगत का परमार्थ छिपा हो ऐसी कोई भी विधा में नई चेतनाएं स्वयंस्फूर्त होकर आ रही है उसका मेरी व्यासपीठ सच्चे दिल से आदर करती है। और हरि ॐ भी बहुत तगडा बोले! मैं खुश होता हूं।

मुझे इतना तो परिणाम जरूर मिल रहा है कि कथा सुनते-सुनते ये युवानी बहुत काम करने लगी है। अब तुम्हारे हाथ में, मुठ्ठी में दुनिया है। कई युवान मेरी 'महाभारत' की बातें सुन-सुनकर अपने मोबाईल से अथवा तो जो व्यवस्था होती है इनमें से 'महाभारत' का पाठ करते हैं! और अभी मैं आया तो केदार ने कहा कि बापू, ये जो द्रौपदी का स्वयंवर है और सीता का जो स्वयंवर है उसका मैंने तुलनात्मक स्वरूप तैयार किया है। और मैं स्तंभित रह गया कि ये नई युवान चेतनाएं कितना काम कर रही है! और जब बात चल रही थी तो एक विचार तो मुझे बहुत अच्छा लगा कि द्रौपदी का जो स्वयंवर है ये नर का स्वयंवर है और सीता स्वयंवर है ये नारायण स्वयंवर है। अर्जुन नर है। मेरा राघव नारायण है। और वहां एक बात मुझे एड करने का विचार आता है कि जानकी के स्वयंवर में रामजी जो है वहां गुरुकृपा है और वो गुरु है त्रिभुवन, शंकर। और द्रौपदी के स्वयंवर में जहां अर्जुन है, वहां जगद्गुरु कृष्ण की कृपा है। और आज के बच्चे जो अपने ढंग से सोच-सोच करके लाते हैं। और मेरे पास जो सामग्री आती है इनमें कई युवानों की सामग्री है! मुझे भाव से डांटा गया है, 'बापू, आपके पास क्योटो की इन्फर्मेशन नहीं है!' सोरी! मैं कुबूल करता हूं, मेरे पास इन्फर्मेशन है ही नहीं! आई हेव नो इन्फर्मेशन! आई वोन्ट टु लिव टोटल एम्प्टी!

छुं शून्य ए न भूल ओ अस्तित्वना खुदा,
तुं तो हशे के केम पण हुं तो जरूर छुं!
-'शून्य' पालनपुरी

और झेन का एक विधान है 'शून्यता' और 'तथाता।' दो किनारों के बीच झेन स्वभाव बह रहा है। जैसे हमारे यहां, 'लोक बेद मत मंजुल कूला।' 'बापू, आपके पास क्योटो की कोई माहिती नहीं है। हम गूगल में से सब माहिती प्राप्त करते हैं। आप गूगल में से प्राप्त करो।' मैं रामजी मंदिर में से गूगल का धूप प्राप्त कर चुका हूं! मैंने गूगल की खुश्बू पाई है, आपने इन्फर्मेशन पाई है! वो है अनुभूति, ये है माहिती। मैं स्वागत इसीलिए करता हूं आपने जो पूछा है बिलकुल सहज पूछा है। और सहजता मेरे लिए वंदना के योग्य है। आदमी सहज होना चाहिए। हम कितने असहज हो चुके हैं! तो ये सब चर्चा सहज है। 'हमारे पास गूगल से सब इन्फर्मेशन है। क्योटो की सब माहिती है गली-गली की।' दोस्त! तुम्हारे पास क्योटो की माहिती है। मैं दो दिन से क्योटो की गली-गली में घूम रहा हूं! मैंने कहा कल, घूमाओ गाडी क्योटो की गली में। और मैंने कहा, मुझे एक जापानीज़ घर में पधरामणी करनी है! तो मैंने कहा ड्राईवर को। एक बूढ़ा खड़ा था, सिगारेट पी रहा था। मैंने कहा, ये अगरबत्तीवाले के घर तो जाना चाहिए! डोक्टर को चाहिए वो मरीज़ के घर जाये। केवल लायन्स क्लब में जाये वो डोक्टर नहीं!

टोकियो में एक कोसूडा नामक वैद्य हुआ है। ये झेन परंपरा में आया है डोक्टर, कोसूडा उसका नाम है। उसको एक मित्र मिलने आया। तो डोक्टर कोसूडा ने मित्र से पूछा कि झेन फ़िलसूफ़ी क्या है? बोले, झेन फ़िलसूफ़ी ये है कि उसमें मृत्यु का भय नहीं लगता डोक्टरसाहब! तो बोले, मुझे कोई ऐसे झेन साधु को मिलना है। बोले चलो, मैं एक महात्मा के पास ले जाता हूं। फिर वो कोसूडा को झेन साधु नानईक के पास ले जाता है। पहुंचा हुआ साधु था। लेकिन ये डोक्टर छिपाकर छूरा लेकर गया कि जो झेन साधु दुनिया को सीखा रहा है कि झेन फ़िलसूफ़ी में मृत्यु का भय नहीं है उसके पास छूरा निकालकर दिखाउं कि मृत्यु का डर लगता है कि नहीं! तो जैसे वो एन्टर होता है तो उस झेन साधु ने कहा कि बहुत दिनों के बाद आये हो। कोसूडा ने कहा कि मैं पहली बार आ रहा हूं! पहले कहां मिले हैं? बोले, स्थूल रूप में मिले न मिले खबर नहीं, झेन फ़कीर बोला, लेकिन हम मिले हैं! नानईक जानता था कोसूडा को। इतनी मधुर सहज बोली में बात की कि छूरा गिर गया! पैर पकड़ लिये और कहा कि मुझे झेन फ़िलसूफ़ी समझाओ। आपको सीखने की जरूरत नहीं है कोसूडासाहब! लेकिन अध्यात्म में मेरा पहला काम ये है। तो मैं क्या करूं? तुम्हारे मरीज़ आये उसकी स्थिति, उसका परिवार, उसकी बिमारी सबका करुणा देकर इलाज करना तेरा झेन है। इतना सहज ये झेन स्वभाव है। साहब, ये आदमी दीक्षित हो गया!

डोक्टर को चाहिए मरीज़ के घर जाये। मैं डोक्टर नहीं हूं! क्योटो की छोटी-सी एक गली में हम गये। तो ड्राईवर को कहा, भाई, उसको तकलीफ़ न हो, मुश्किल न हो तो हम आये? हमें आना है। तो एक बूढ़ी माताजी बाहर आई। वो जानती नहीं थी। वो मुझे कहां जाने! और दुनिया जाने इससे फ़ायदा भी क्या होनेवाला है! कम से कम सद्गुरु जाने। बात खतम! ईश्वर न जाने तो भी कोई चिंता नहीं। जिन बुद्धपुरुष ने हमारी आंख खोली वो हमें भूले न। साधु केवल सिद्धांतवादी नहीं होता। नरसैया कहता है, कर्म का फल हो न हो, कर्म सिद्धांत जाने। 'सुख-दुःख तो घट साथे घडिया।' वळी सवो भगत तो कहे-

सुख दुःख आवे हरिनी इच्छा वडे।

वो तो कहता है, हरि की इच्छा से सुख-दुःख आते हैं। लेकिन 'नाम वाळाने नहीं नडे।' इसीलिए क्षण में जी लेना। तुलसी यही बात 'मानस' में कहते हैं-

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा।

कथा उधार परिणाम देनेवाली वस्तु नहीं है। मैं इस क्षेत्र में हूं इसीलिए मैं अर्थवाद नहीं कर रहा हूं। आप लाख पुन्य करो ये उधार है, परिणाम कालान्तर में मिलता है। यहां पुन्य करो, हमें बताया गया, स्वर्ग मिलेगा। कब मिलेगा पता नहीं! कथा आज सुनो, आज हीं आनंद मिलता है। कथा अभी सुनो, अभी ही आनंद मिलता है। संताप किसको नहीं हैं? लेकिन भगवत्कथा क्षण में जीना सिखाती है इसीलिए उसी क्षण कोई संताप नहीं रहता। कथा के समय ही हमें आनंद आता है। ये मेरा-आपका अनुभव है। इसका मतलब ये नहीं कि हमारा संताप मिट गया। जैसे कथा पूरी होगी स्वाभाविक है फिर संताप हमें घिर ले, हो सकता है। लेकिन अभी कोई संताप नहीं।

तो, 'धन्य आजनी घडी ते रळियामणी...' एक क्षण को जीने की बात हमारे मेहता कह गये साहब! कल की किसको खबर? पल शुरू हो, खतम हो, बीच में खेल लो। शुरू होगा वो खतम होगा ही। लेकिन राम ने क्षणभंगुर को कैसे आत्मसात् किया? मैं आपको प्रमाण दूं। एक क्षणभंगुर जो झेन फिलसूफी है वो कहां-कहां 'मानस' के साथ अकबंध है? राम ने क्या किया? 'अति लाघव उठाय घनु लिन्हा।' सीता स्वयंवर में धनुषभंग की देर हो रही थी। सीताजी को एक-एक पल मृत्यु की पल दिखती थी! क्या होगा? क्या होगा? और भगवान राम ने सबको देख लिया। और प्रभु ने देखते-देखते एक विशिष्ट स्थान पर बैठी किशोरीजी, विदेहनंदिनी उसके सामने देखा। तुलसी ने क्षणों की बहुत बात की है। हनुमानजी ने क्या देखा?

सो छन कपिहि कलप सम बीता।

क्षण पकड़ ली कि यदि एक क्षण चुका तो जानकी चली जाएगी! क्षण में जी ले। और भगवान राम ने देखा, जानकी के सामने ताका और सियाजू की पल-पल बदलती स्थिति को जब पहचाना तब तुलसी शब्द क्या लिखते हैं, 'तेहि छन...' क्षण, पल, घडी, मोमेन्ट, पर्टिक्यूलर मोमेन्ट। एक क्षण शुरू हुई, सोचने में निकाल दी; दूसरी शुरू हो इसके बीच में धनुष तोड़ा। तुलसी कहते हैं कि क्षण शुरू हुई कि पूरी हुई उसके बीच में 'तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।' एक क्षण के मध्य में धनुषभंग कर दिया।

मेरे भाई-बहन, ऐसा एक समाज पैदा करे हम जो पल में जीता हो। आगे क्या होगा हमें खबर नहीं है। अतीत चला गया है। भविष्य अभी गर्भ में है। क्या जन्मेगा अल्लाह जानें! वर्तमान हमारी मुठ्ठी में है। और लाओत्सु का एक वचन है। लाओत्सु ने कुछ बुद्धपुरुष के लक्षण गिनाये हैं। मेरी स्मृति में जितना है इतना ही कहूंगा। लाओत्सु ने कहा है कि परमात्मा को-परमतत्त्व को समझा जा सकता है, बुद्धपुरुष को समझा जा नहीं सकता। इससे आपको मस्ती आये, आनंद मिले लेकिन आप पूरा जान न पाओ। ये लक्षण है लाओत्सु का। हम पूरा इधर-उधर परिकम्मा कर ले, हर एंगल से देख लें लेकिन-

गुरु, तारो पार न पायो, हे न पायो,

प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीए...

और अनुभूति से भरा हुआ ये पद का कर्ता कहता है, 'प्रथमीना मालिक', पृथ्वी नहीं। सुधारने की जरूरत नहीं है। जो सहज शब्द निकला वो ही ब्रह्म है।

प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीए...

आ छोकराव जे कामे लाग्या छे साहेब! मने बहु गमे साहेब! समर्पित आ लोको छे! कारण के एने खबर छे मारी व्यासपीठ शोषण नथी करती, पोषण करे छे। नहींतर आने लूंटवा होय तो वार न लागे साहेब! शोषण थतां वार न लागे! अने जे धर्म शोषण करे ए अधर्म छे। 'सुगंधिम् पुष्टिम् वर्धनम्।' एनुं वर्धन थवुं जोईए, एनी पुष्टि थवी जोईए। उनमें रही खुश्बू और बढ़नी चाहिए। और युवानों को मैं कहूं बेटे, पल में जीना बस। मेरे दादा, मेरे सद्गुरु भगवान मुझे कहते रहते कि बेटा, जिसमें जीव हो लेकिन गति न हो वो पेड़ है। मेरा 'रामायण' का पठन चल रहा था तो कुछ विशेष बातें जब होती थी तब कहे, इतना ध्यान रखना कि जिसमें जीव हो लेकिन गति न हो ये पेड़ है। जिसमें जीव भी हो और गति भी हो वो पशु है। लेकिन जिसमें जीव हो, गति भी हो और निश्चित लक्ष्य हो ये मनुष्य है। और जीव, गति, लक्ष्य इन तीनों से जो पर है वो शिव है।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।

कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।

तो जो पेड़, पशु, मनुष्य, लक्ष्य सबसे बाहर निकल जाता है बेटा, वो परमतत्त्व है-

असि सब भाँति अलौकिक करनी।

महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

लाओत्सु कहता है बुद्धपुरुष का लक्षण कि परमतत्त्व शायद जाना भी जाये लेकिन गुरुतत्त्व जाना नहीं जाता। ये लाओत्सु ने तो पचीस सौ साल पहले कहा। लेकिन हमारे यहां? गुरुपद जो है। ये व्यक्ति की बात नहीं कर रहा हूं मैं। जिसको हम बुद्धपुरुष कहते हैं। बहुत विशाल अर्थ में कह रहा हूं मैं। उसको आप गलत अर्थ में लो तो आई डोन्ट माईन्ड। गुरु को हमने ब्रह्मा कहा, गुरु को हमनें विष्णु कहा, गुरु को हमने महेश्वर कहा लेकिन हद कर दी! 'गुरु साक्षात् परब्रह्म।' और ताओ भी बुद्धपुरुष के लक्षण की बातों में पहली बात कहते हैं कि उसको कोई नहीं जान पाता! समझ में न आये। सच्चा बुद्धपुरुष हो उसकी साधना क्या हो उसको भी आप खोज न पाओ। पता ही न लगे। तो क्या करे? तो कागबापु ने एक पंक्ति लखी-

वैद्य घरना वाटेला ओल्या ओसड नहीं ओळखाय,

भाई एने भरोसे रे'वाय,

भरोसे रे'वाय एमां पंड्यना डापण न डोळाय,

भाई एने भरोसे रे'वाय...

अमुक तत्त्वों में तो भरोसा ही रखना पड़ता है साहब! विवेकानंदजी ने कहा, 'विश्वास जीवन है। संशय मोत।' 'गीता' हस्ताक्षर करती है, 'संशयात्मा विनश्यति।'

तो मैं गया वो बूढ़ा सिगारेट पी रहा था। उसके घर निर्देश किया। एक बूढ़ी माताजी बोले, हम अपने घर कैसे ले जाये? सब क्लिनिंग चल रहा है, रविवार है। मैंने कहा, कुछ करने की जरूरत नहीं है। कहने का मेरा मतलब, हम खोज रहे थे कि हिन्दुस्तान में कोई साधु-फ़कीर घूमता हुआ मिल जाता है। बेंगोल में जैसे कोई गाता हुआ, रोता हुआ बाउल मिल जाता है। अफ़घानिस्तान में अल्लाह को पुकारता हुआ कोई सूफ़ी मिल जाता है। मेरी मनीषा थी कि यहां भी कोई झेन साधु मिल जाये तो उसकी हम खोज कर रहे थे गली गली। इरादा मेरा ये था। लेकिन बड़ा आतिथ्य हमनें पाया। अच्छा लगा मुझे। देखो, एक वस्तु याद रखना कि जापान का प्रत्येक घर मंदिर है। क्यों कहता हूं? किसीके घर में आप जूते पहनकर के प्रवेश नहीं कर सकते। चाहे मोरारिबापू हो, कोई भी हो। ये साफ़ विवेक से कह देते हैं, जूते बाहर। ये मंदिर है।

लाओत्सु कहते हैं बुद्धपुरुष के लक्षण में जो जाना नहीं जाता। वो तो अपनी भाषा में बोले लेकिन उसका भाषांतर जो प्राप्य है उसमें लिखा है, गुरु बहुत गूढ़ है। अब मुझे कहना है तो मैं कहूं, गुरु गूढ़ है, गुरु मूढ़ नहीं है क्योंकि बुद्धत्व प्राप्य है। उसको पता है कि-

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।

जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ।।

फिर पल, क्षण। उसी मोमेन्ट में वो ऐसा हो जाता है। तो गुरु बहुत गूढ़ है। और हमारे लिए तो गुरु ये 'रामचरित मानस' है।

सद्गुर ग्यान बिराग जोग के।

और ये बहुत गूढ़ है शास्त्र। तुलसी स्वयं कहते हैं-

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।

पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति।।

लेकिन पार्वती बहुत सयानी है, कहती है, गुरु गूढ़ है ना? ये आपका ग्रंथ गूढ़ है ना? तो भगवन्-

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं।

आरत अधिकारी जहँ पावहिं।।

गूढ़ से गूढ़ बात को साधु कभी छिपाता नहीं। शर्त इतनी होती है जहां आर्त जिज्ञासु मिल जाये वहां गूढ़ से गूढ़ रहस्य बुद्धपुरुष खोल देता है। मैं आपका शरणागत हूं, आर्त हूं। कहा कि गूढ़ से गूढ़ तत्त्व मुझे बता दो।

चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा।

किन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा।।

तो लाओत्सु कहता है, बुद्धपुरुष को पहचानने में, पहला परिचय है जिसका हमको पता न लगे। अखा की एक पंक्ति है, जैसे पंखी जब उड़ता है न तो फिर पैर दिखने बंद हो जाते हैं। तो अखा इस दृश्य को, इस रूपक को पकड़ लेता है और कहता है कि बुद्धपुरुष वो है जब उड़ान भरता है तो कदमों के निशान नहीं दिखते हैं। ये अगम की यात्रा है। ये विहंग की यात्रा है। पदनक्ष नहीं छोड़ता है। तो गुरु है गूढ़। बुद्धपुरुष जो गूढ़ है। उसकी सहजता ऐसी है कि उसकी गूढ़ता को हम नहीं समझ पाते। हमको लगे कि हमारे जैसा है। कबीर सबके बीच में बैठते थे। हिन्दु-मुस्लिम सबको लगे कि हमारा आदमी है। ये ही सहजता है उसकी।

लाओत्सु कहता है, बुद्धपुरुष का दूसरा लक्षण है, दूसरा उसका स्वभाव है कि वो सदा सतर्क रहता है। सावधान रहता है गुरु। और झेन फिलसूफी में भी सूक्ष्म सावधानी नितांत आवश्यक मानी गई है। और फिर लाओत्सु एक दृष्टांत देता है कि दुश्मन की शिबिर में रहकर जितना सावधान रहना पड़ता है, ऐसा संसार में रहकर बुद्धपुरुष सावधान रहता है। साधुपुरुष वो है जो संसार में रहकर लगे कि कुछ नहीं लेकिन सावधान बहुत रहता है। ब्रह्मलीन डोंगरेजीबापा एक वाक्य सतत ध्रुववाक्य जैसे ये बोलते रहते थे अपनी कथा में, 'शुकदेवजी सावधान करे छे।' और तुलसी कहते हैं-

सावधान मन करि पुनि संकर।

बुद्धपुरुष निरंतर सावधान रहता है। बुद्धपुरुष दुश्मनों के बीच सावधान रहता है। यहां आध्यात्मिक अर्थ ये है कि दुश्मन मानी काम, क्रोध, लोभ। षड्विकार, षड्रिपु कहते हैं। ये मुझे रास नहीं आता है। मुझे माफ़ करिएगा, ये मेरा

व्यक्तिगत अभिप्राय है। काम को दुश्मन क्यों समझते हो? क्रोध को दुश्मन क्यों समझते हो? लोभ को दुश्मन क्यों समझते हो? विकृति को दुश्मन समझो। क्रोध जब विकृति बन जाये तो दुश्मन है। बाकी जीवन में क्रोध जरूरी है। ये वात, पित्त, कफ़ है ये तीन हमारे दुश्मन नहीं है। ये हमारी बोडी को सुरक्षा देता है वात, पित्त, कफ़। षड्रिपु माना है। ये ऋषिमुनिओं की बात है, मुझे माफ़ करे लेकिन दुश्मनी क्यों? हर चीजों के साथ दुश्मनी क्यों? दोस्ती नहीं हो सकती? हर वस्तु विकार? क्या विकार को संस्कार में बदला नहीं जा सकता? काम विकार है, काम विकार है! तो लग्न को संस्कार क्यों कहते हो? सम्यक् काम जरूरी है साहब! गालियां मत दो! आपको पता है, भारतीय दर्शनों में हरेक विधि के देवता होते हैं। लग्नविधि के देवता का नाम है कामदेव। काम बुरा नहीं है, कामुकता बुरी है; विकृति बुरी है। ये विकृत हो जाये तो ट्रीटमेन्ट की जरूरत है। विकृति बुरी है अवश्य। भगवान कृष्ण कहते हैं, प्रजोत्पत्ति में सम्यक् उपयोग में आया काम मेरी विभूति है। किसीको भी दुश्मन मत समझो।

तो लाओत्सु उसको दुश्मन कहते हैं। हमारा धर्मग्रंथ भी उसको षड्रिपु कहता हैं। नर्क का पंथ कहा है। कहा होगा पांच हजार साल पहले! अत्यंत क्रोध बुरा है। सम्यक् क्रोध जरूरी है। शरीर में पित्त चाहिए, पित्तप्रकोप नहीं चाहिए। ये तुलसी का आयुर्वेद है। जैसे बोडी में तीनों की सम्यक्ता आदमी को तंदुरस्त रखता है, वैसे मन में भी तीनों की सम्यक्ता आदमी के मन को तंदुरस्त रखता है। पाप व्यक्तिगत है। उसका फल हमें अकेले को भोगना पड़ता है। लेकिन व्यसन एक ऐसी वस्तु है कि तुम्हारे पूरे परिवार को भोगना पड़ता है। व्यसन का एक अर्थ होता है दुःख, पीड़ा। आपके घर में कोई शराबी हो तो पूरा परिवार भोगता है।

बाप! लाओत्सु कहता है, दुश्मनों की छावणी में जैसे सतर्क रहना पड़ता है ऐसे बुद्धपुरुष सदा जागृत रहता है। ये जागृतिवाली, सतर्कतावाली बात मुझे रास आती है लेकिन दुश्मनों के बीचवाली बात मुझे रास नहीं आती है। दुश्मन क्यों? इससे गुफ़्तगू करो, इससे बातें करो। विकृति खराब है। अतिरेक खराब है। विवेकानंदजी ने कहा है, हद से ज्यादा मात्रा बढ़ जाती है वो सब विष बन जाता है; वो जहर हो जाता है।

तीसरा, मुझे बहुत प्यारा लगता है बुद्धपुरुष का लक्षण लाओत्सु कथित वो है, बुद्धपुरुष वर्तमान का पर्याय है। ना अतीत, ना फ्यूचर, केवल वर्तमान। इसीलिए गंगासती को गाते-गाते उनके शब्द को बदला न जाये लेकिन उनको प्रणाम करके मैं गा लेता हूं-

शीलवंत साधुने वारेवारे नमीए पानबाई!

जेनां बदले नहि वर्तमान रे;

शब्द तो है 'व्रतमान' लेकिन मेरे लिए ये अच्छा है, 'वर्तमान।' कायम वर्तमान में जीये, क्षण में जीये, पल में जीये। बहुत प्यारा लगता है लाओत्सु का वचन। गुरु वर्तमान है। गया नहीं, होगा नहीं, है।

आगे का लाओत्सु कथित बुद्धपुरुष के परिचय का लक्षण, जिसका जीवन, जिसके व्यवहार, जिसका वचन, जिसका प्रत्येक वर्तन सादगी से ओतप्रोत है। और झेन फ़िलसूफ़ी भी सादगी की महिमा करती है। आडंबर उसको करना पडता है जिसको पता है कि बिना आडंबर मैं स्वीकार्य नहीं होउंगा। जो स्वतः स्वीकार्य हो जाता है सादगी से, सहजता से उसे आडंबर नहीं करना पड़ता। तो बुद्धपुरुष वो है जिसका जीवन सरल, सादगी से भरा हो। ये जो हम स्वाभाविक जिन सूत्रों का पान कर रहे है हैं ऐसे ही सूत्र लाओत्सु से मिल रहे हैं; झेन फ़िलसूफ़ी में भी मिलता है। आगे का सूत्र, लाओत्सु कहता है, जो सबका स्वीकार करता है वो बुद्धपुरुष है। मेरा सूत्र नहीं है। मैं सालों से बोल रहा हूं ये बात ओर है लेकिन पहले भी कोई बोल चुका है। पता नहीं हो और लाओत्सु से सपोर्ट मिल जाये इससे बल बढ़ता है। लेकिन लाओत्सु बोला है, स्वीकार करे वो साधु है। कल ही हम राजेन्द्रबापू को याद करते थे-

निषेध कोईने नहीं, विदाय कोईने नहीं।

हुं शुद्ध आवकार छुं, हु सर्वनो समास छुं।

ये झेन विचार, ताओ विचार जो भारतीय मूल विचार है स्वीकार। बुद्ध को जब नगरवधू ने निमंत्रित किया भिक्षा के लिए। और कहा कि आप चातुर्मास करे। तो बुद्ध ने कहा था, आज तो तेरे पास आनेवाले बहुत है। सम्राटों के मुकुटमणि तेरे कदमों में, तेरे झांझर की झनकार में गिर जाते हैं लेकिन जब सब साथ छोड़ देंगे तब तू मेरे पास आना। तब मैं होउंगा। ये स्वीकार। मैं दोहरा रहा हूं, कथा के मंच पर मैंने पहली बार ये निवेदन किया है कि राम अहल्या का उद्धार न करते तो मोरारिबापू रामकथा न करते। स्वीकार होना चाहिए। आदमी कुसूर करता है। परमतत्त्व के सिवा कौन पूर्ण है? स्वीकार करो। मेरी व्यासपीठ से जो मोहब्बत करते हैं उसको मेरी प्रार्थना है स्वीकार करो, कोई भी हो। पतित कह देना आसान है। पतित को पावन करना वो रामकथा है।

लाओत्सु का एक सूत्र मुझे और याद आ रहा है। लाओत्सु कहता है, गुरु खीण है, खाई है। जिस खीण में जो भी आये उसको खीण कुबूल कर लेती है। पत्थर गिरा कुबूल। झरणों का पानी आया कुबूल। कौआ आया कुबूल। कोकिल आई कुबूल। जैसे है उसको स्वीकार। लाओत्सु उसको बुद्धत्व की निशानी मानता है। और भारतीय परंपरा में तो ये है। बीच में किसीके कुसूर के कारण भोगना पड़ रहा है, बात ओर है। यहां शास्त्र के समापन में मेरे तुलसी कहते हैं; तुलसी को क्या जरूरत थी कि शास्त्र के समापन में नगर स्त्री को याद करे? 'रामचरित मानस' जैसा सद्ग्रंथ पूरा होने जा रहा था तब तो कोई पुण्यश्लोक की चर्चा करनी चाहिए ना? लेकिन किसको याद किया?

गनिका अजामिल ब्याध गिध गजादि खल तारे घना।

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।

ऐसे-ऐसे लोग को तारा है राम ने। इसीलिए तुलसी कहते हैं कि अब मैं बोलूंगा, 'राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।' राम के समान कौन समर्थ है जो सबका स्वीकार करे? तो जो सबका स्वीकार करता है वो है बुद्धपुरुष। और आखिर में एक वस्तु, ताओ जो परमतत्त्व को जितना पूर्ण समझता है, उतना ही कोई भी रूप में सामने आये उसको भी वो पूर्ण मानता है। 'ये अज्ञानी है!' 'ये कुछ जानता नहीं है!' नहीं! जागा नहीं है। लेकिन बुद्धपुरुष को पता है कि सोया हुआ है लेकिन बुद्धत्व तो उसमें भी है। तुलसी का 'विनयपत्रिका' में एक वाक्य है, 'बिटप मध्य पुतरिका।' हर पेड़ में पूतली है। कोई पेड ऐसा नहीं कि जिसमें पूतली न हो। जैसे बुद्ध कहा करते थे, हर पथ्थर में मूर्ति है। अनावश्यक पथ्थर को कोई विवेक टांकणें से हटा दे तो बुद्धत्व उसमें भी है। ओशो कहते हैं, 'सवाल पाने का नहीं है, सवाल पहचान का है।' जो ओशो की बड़ी प्यारी बात है। जो अच्छी लगती है, मैं तो संसार में खुला कहता हूं जो बात हमारी रुचि के अनुकूल न हो तो उसमें तो ओशो भी नाराज नहीं है। हर बात को कुबूल कर लेना हमारी बाध्यता थोड़ी है? लेकिन जो बात है वो तो माननी पड़ेगी। आप सब ने तो सुना ही होगा, ओशो का एक वाक्य मुझे बहुत प्रिय है। ओशो कहते हैं कि 'मैं आपके सामने बोलने नहीं आया हूं, आपको बुलाने आया हूं।' बोलना, लोगों को समझाना, अच्छा गाना, लोगों को प्रभाव में लिप्त कर देना सब आसान है! सहज हो तो बात ओर है। लेकिन ज्ञान में बोलना ये कुछ जरूरत नहीं है। तुलसी तो कहे, ज्ञान का पहला परिचय है जहां बिलकुल अभिमान नहीं है; जहां कोई बोज नहीं है; निर्भार है। और दूसरी बात, सब में समान ब्रह्म दिखता है। चींटी के पैर में भी सांई बोले और मस्जिद की अज्ञान में भी वो ही बोले। जो कबीर का कथन है, सब में ब्रह्म को दिखना। तो लाओत्सु वो ही बात कहते हैं, सब पूर्ण है, जागे नहीं है। ये फ़र्क है। आखिर में एक बात मैं बता दूं आपको, बाद में आज की कथा पूरी कर दूं। सब कथा सुनते हैं तो मेरे पास गज़ल और कविताएं सब भेजते हैं। तो आज ये एक गज़ल भेजी है मिलिन्द गढवी ने। मिलिन्द तो दोनों भाषा में अच्छा काम कर रहा है।

तेरे चरणों को पाना है।

फूलो जैसा बन जाना है।

तेरा प्याला मेरी माला,

अपना-अपना मयखाना है।

अब, कल प्रणव को याद किया था तो उसने 'इदम् न मम।'वाली गज़ल भेजी है।

होय थोडुं घणुं इदम् न मम।

आभ होय के अणु इदम् न मम।

घाट तारो अने तुं ज घडनारो,

शुं लउं टांकणुं इदम् न मम।

कथा के मंच पर मैंने पहली बार ये निवेदन किया है कि राम अहल्या का उद्धार न करते तो मोरारिबापू रामकथा न करते। स्वीकार होना चाहिए। आदमी कुसूर करता है। परमतत्त्व के सिवा कौन पूर्ण है? स्वीकार करो। मेरी व्यासपीठ से जो मोहब्बत करते हैं उसको मेरी प्रार्थना है स्वीकार करो, कोई भी हो। पतित कह देना आसान है। पतित को पावन करना वो रामकथा है।

मानस–सहज : ४

सहज बहना जीवन है

आइए, इस कथा का जो केन्द्रीय विचार है 'मानस-सहज', उसकी सहज रूप में कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा आगे बढ़ायें। पानी का सहज स्वभाव है, ये भी कहूं कि वैज्ञानिक सिद्धांत है कि सम स्तर पर रहना। लेकिन पानी का स्वभाव, सहजता ये बहना है। सिद्धांत है सम, स्वभाव है बहना। ये तो हमारा दर्शन है। हो सकता है हमारा आरोप है हमारी ओर से। कभी नदी को बोलने दो कि नदी क्यों बहती है? हम अपना दर्शन पेश करते हैं कि नदी सागर को मिलने के लिए दौड़ती है। जो 'मानस'कार ने भी कुबूल किया है-

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।

नदी के बहाव पर ये हमारी कोमेन्ट है कि वो इसीलिए दौड़ती है कि सागर को मिलना है। लेकिन कोई नदी से बुलवाये कि तू क्यों दौड़ती है? तो नदी शायद कह सकती है कि सागर मिले न मिले, इससे मेरा कोई ताल्लुक नहीं है। मेरा स्वभाव है बहना। दूसरों पर उपकार करने से स्वर्ग मिले, पुण्य मिले, वैकुंठ मिले, इज़्ज़त मिले ये हम कहते हैं; ग्रंथ कहते हैं-

पर उपकार बचन मन काया।
संत सहज सुभाव खगराया।।

भुशुंडि कहते हैं, हे गरुड, उपकार का काम क्या है वो साधु को पता नहीं है। निश्चित, साधु को पता नहीं है। शायद शास्त्र को पता है, साधु को पता नहीं है। साधु का तो मन-वचन-कर्म से दूसरों पर उपकार करना ये उनका सहज सुभाव है। किसी कवि ने मीरां से बुलवाया था कि मीरां, तू वृंदावन जा रही है पांच हजार साल के बाद! उसका कोई अतापता नहीं है। और हरीन्द्र दवे का कृष्ण तो 'माधव क्यांय नथी।' हरीन्द्रभाई की ये कविता भी मुझे बहुत छूती है-

फूल कहे भमरा ने, भमरो वात वहे गुंजनमां:
माधव, क्यांय नथी मधुवनमां।
कालिन्दीनां जल पर झूकी पूछे कदंबडाळी,
याद तने बेसी अहीं वेणु वाता'ता वनमाळी?

उसी कच्छ की धरा पर मैं ओर आगे बढ़ूं तो एक थारो भगत, 'श्याम विना व्रज सूनुं लागे...' और ये 'सूनुं लागे' इसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती। और उसमें थारो भगत एक पंक्ति बहुत प्यारी कहते हैं कि व्रजांगनाएं कहती है कि उद्धो, गोविंद को कहना कि उसको हमारे साथ रहना अच्छा न लगे तो कभी भी न आये। मालिक का कौन मालिक? उद्धो, उसको कहना, हम गरीब व्रजवासीओं पर रोष न करे। यही कच्छ की भूमि का एक साहित्यकार हरीन्द्र दवे। मैंने पहली बार कोई पूरी किताब पढ़ी हो तो हरीन्द्रभाई की 'माधव क्यांय नथी।' क्योंकि मेरे स्वभाव में ज्यादा पढ़ना सहज नहीं था। लेकिन ये किताब पकड़ने के बाद मैं छोड़ नहीं पाया था। और हर पंक्ति ने मुझे रुलाया था! चुके जा रहे हैं नारद! हम सब नारद की तरह परिव्राजक है। मीरां को कहा गया कि कृष्ण को पांच हजार साल हो गये हैं, कहां मिलेंगे? बहावरी न बन! तो मीरां ने कहा, आपके पास किसी ने गलत इन्फर्मेशन दी है कि मीरां कृष्ण को प्राप्त करने के लिए दौड़ रही है! मैं कृष्ण को पाने के लिए नहीं दौड़ रही हूं। मेरा स्वभाव है उसके प्रति बहना, उसके प्रति गति करना। ये विश्व का परिपूर्ण गुरुत्वाकर्षण है कृष्ण जो खिंचता है। कृष्ण लोहे का चुंबक नहीं है। कृष्ण प्रेम का चुंबक है। मेरे सुननेवाले जानते हैं कि मैं हर वक्त कहता हूं कि ये आदमी को पांच हजार साल हो गये। कभी उसने मनीओर्डर नहीं भेजा है फिर भी हम क्यों पुकारते हैं? क्यों उसको गाते हैं? कोई लालच है? न तो। सहज बहना जीवन है।

तो सरिताओं पर हमारा आरोप हो सकता है कि सागर को मिलन के लिए दौड़ती है। यदि सरिता से बुलवाया जाय तो शायद कहेगी कि बहना मेरा सहज स्वभाव है। और बहती है तब भी बीच में गड्ढा आयेगा तो अतिक्रमण नहीं करती। पहले उसको भर देती है फिर आगे जाएगी। आगे जाने के लिए बाध्यता है कि बीच में जो अभावग्रस्त आये उसको भरो। तुम्हें यदि आगे जाना है तो ये शर्त है। बीच में जो वंचित लोग मिल जाये उसको आप ओवरटेईक नहीं कर सकते। आप गति नहीं कर सकते। नेवर।

तो पानी बहता है। सरिता बहती है। कविता में भले हम कहे, 'सरिता सागर मळवाने चाली।' जरूर अच्छी बात है। तो बहना ये नदी का सहज स्वभाव है। कालापन ये धुएं का सहज स्वभाव है। और कुछ प्राणीओं को परस्पर वैर रखना उसका सहज वैर का स्वभाव है। बिल्ली और चूहे के बीच में सहज वैर है। कुत्ते और बिल्ली के बीच में सहज वैर है। तुलसी उसको सहज वैर कहते हैं। तो धुएं का स्वभाव काला है लेकिन मैंने देखा है इसीलिए मैं कह रहा हूं कि कुछ ऐसे पदार्थ इकट्ठे कर के रसायण मिलाकर यदि जलाया जाये तो सोनेरी धुआं भी निकाला गया है। लेकिन ये तो प्रयोग है। स्वाभाविक नहीं है। आज का जो झेन है उसमें भी मुझे लगता है कि बहुत प्रयोग आ गये हैं! ये कालान्तर में होता रहता है। मैं चाहूं कि झेन का मूल स्वभाव बना रहना चाहिए। लेकिन कालान्तर में विकृति तो नहीं कहूं लेकिन जो भी हो लेकिन कुछ प्रवाह डाबर हो ही जाता है! झेन स्वभाव में एक साधु हुआ होतेय। कहते हैं टोकियो में रहता था। कुछ नहीं करता था, उसके कंधे पर एक शण का कोथळा रखता था। और सबके पास जा-जा के एक येन मांगता था। एक येन दो, एक येन दो। बड़ा पहुंचा हुआ विचारक था लेकिन कोई मठ नहीं बनाया था। ये मूल झेन। चार वस्तु मुझे बहुत प्रेरणा लेनेवाली होतेय से मिलती है कि इतना पहुंचा हुआ फ़कीर होते हुए भी उसने कोई मठ नहीं बनाया था। वसीम बरेलवीसाहब का बहुत प्यारा शे'र है, मैं क्वोट किया करता हूं कि-

वो जहां भी रहेगा रोशनी फ़ैलाएगा।
चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।

आज सुबह नास्ता करता था तो नरेशभाई आये। मैं आधा काम तो मुस्कराहट से ही पूरा कर देता हूं। मुखरता तो मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा काम तो मुस्कुराना है। तो मैंने एक हल्की-सी मुस्कुराहट दी। उसको ऐसा न लगे कि बापू ने

एक नज़र भी नहीं दी! तो आज ये बैठे-बैठे-

ये विशाल नयन जैसे नील गगन...

ये नरेशभाई ने आज जो उठाई थी चौपाई! मुझे मौन था वर्ना मुझे भी शुरू करना था! ये तो इतने में ही रुक गये, 'ये विशाल नयन जैसे नील गगन!' कितना प्यारा गीत है? फिल्म में चला गया तो क्या अस्पृश्य हो गया? शुभ जहां से मिले ले लो। परहेज क्यों? पहले एक समय था कि लोग पूरी पंक्ति का परहेज करते थे कि ये ब्राह्मण की पंक्ति, ये पटेल की पंक्ति, ये वैश्य की पंक्ति। अब ये तो छोड़ना पड़ेगा। अब चलेगा नहीं ज्यादा! हम उसी काम में लगे हैं। अब क्या है, वो पंक्ति गई तो कोई भी छोटी-छोटी पंक्ति से परहेज़ करने लगे! कविता से परहेज़ करने लगे! हर पंगत में भंडारा करो। जहां कुछ शुभ है, प्रासादिक वस्तु उतरी हो तो उसमें तकलीफ़ क्या? ये मैं सहज जो कोई पिक्चर की पंक्ति गाता हूं तो, शुरूआत में तो...! मेरे से तो ये हनुमानजी की दुआ है और आप सबकी दुआ है तो मुख पर नहीं कहते हैं लेकिन हमारे धर्माचार्य जो है उसके मन में थोड़ी पीड़ा होती थी कि ये बापू क्या करने जा रहा है! कथा में फिल्म का गीत? लेकिन अब सब राजी है। क्योंकि जब संदर्भ समझते हैं कि मैं किस अर्थ में गाता हूं? या तो मैं कोई गीत लूंगा तो कोई क्लासिकल राग होगा जो सुंदर होगा।

कोई मतवाला आया मेरे द्वारे,

अखियों में कर गया अजब इशारे।

बोधिधर्म आया होगा तो यहां की प्रकृति ने नहीं गाया होगा कि हिन्दुस्तान से कोई मतवाला मेरे द्वार आया! और बोला कुछ नहीं, मौन। क्या किया उसने? तो पंक्तिभेद क्यों? परहेज़ क्यों? किस संदर्भ लिया जा रहा है उस पर ध्यान दे। सुंदर भारतीय नृत्य हो, भारतीय राग हो।

तो 'ये विशाल नयन जैसे नीलगगन पंछी की तरह खो जाउं मैं...' हे बुद्धपुरुष, तेरी आंखों में मैं विलीन हो जाउं। कितना प्यारा भाव है! तेरी आंख में मुझे जगह मिले क्योंकि तेरी दृष्टि विशाल है, संकीर्ण नहीं है। गगन सिद्धांत है तेरा। और आपको पता है कि निजामुद्दीन ओलिया जब सोते थे, अमीर खुशरो को अपने पास सुलाते थे। कहा था वसियत में कि ईस्लाम में यदि व्यवस्था हो तो अमीर खुशरो को मेरे साथ मेरी कब्र में ही दफ़नाना! और शायद इस गीत का गीतकार सावधान है, बेहोश नहीं है। पहली दृष्टि तो हमारी देहवादी ही होती है इसीलिए जरूर उसने कह दिया कि 'तन भी सुंदर...' लेकिन अंदर से पकड़ा उसने, 'मन भी सुंदर'; देह दीवार है लेकिन सर्जक वो छेद कर देगा, 'तन भी सुंदर, मन भी सुंदर' और फिर बाद में पता लगता है कि तू 'सुंदरता की मूरत है।'

मधुराधिपते रखिलं मधुरं...

जानकी के लिए लिखा है 'मानस' में-

सुंदरता कहुँ सुंदर करई।

छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।।

तो रचनाकार सावधान है। सोने की गिनी कीचड़ में गिर जाये तो मूल्य कम नहीं होता। वैसे कोई भी पंक्ति, कोई ऐसी जगह इस्तेमाल की गई तो अस्पृश्य हो गई! मेरी व्यासपीठ कुबूल नहीं करती। इसीलिए मैं पंक्तियां गाता रहता हूं। तो पहले कुछ महापुरुष को पीड़ा होती थी। अब तो उसको मैंने आदत डाल दी है! मेरे कहने का मतलब कि पंक्ति को किस संदर्भ में उतारा जा रहा है? संस्कृत में भी कोई गालियां कम नहीं! मैत्रेयी 'भागवत' में विदुरजी को शिवचरित्र सुनाते हैं। कभी प्रकरण पढ़ लेना 'भागवतजी' में। तुलसी ने उसमें से बहुत चीजें उतारी है सती प्रकरण में। अब जब दक्ष प्रजापति नायक बन गये तो उसका सत्कार समारंभ सब जगह होने लगता है। स्वाभाविक है। ये हमारे यहां पहले से प्रथा है कि कोई भी किसी पद पर नियुक्त हो जाता है तो कुछ समय तो सन्मान समारंभ ही चलते रहते हैं! इसका कोई विरोध नहीं है। ये लोगो का आदर है, ठीक है। लेकिन थोड़ा नियंत्रित करना जरूरी है। तो ये होना चाहिए लेकिन अतिरेक भी तो ठीक नहीं। खेर! इसमें समय और संपत्ति दोनों का व्यय होता है। और सेवाक्षेत्र में आये लोगों को चाहिए कि दोनों बचाकर के राष्ट्रगौरव में उसका सदुपयोग होने लगे। ज्यादा क्या? ठीक है, लेकिन ये होता है।

तो दक्ष का एक जाहेर सन्मान आयोजित किया गया। और उसमें कैसे लोग आये? ब्रह्माजी स्वयं आये।

विष्णु भगवान स्वयं आये। और ये शंकरबाबा तो दामाद! जमाईराज भी आये। सब आते हैं और जिसका सन्मान होना है वो प्रजापति महोदय, नायक दक्ष प्रजापति बाद में पधारते हैं। तो स्वाभाविक है उसका सन्मान है तो सब खड़े हो जाते हैं। तीन लोग खड़े नहीं हुए थे। विष्णु भगवान खड़े नहीं हुए। ब्रह्माजी खड़े नहीं हुए और भोलेबाबा तो अंतर्मुख है। तो वो ऐसे बैठे रहे! अब जो सन्मानप्रिय होता है ना ये आदमी सभा में प्रवेश किया तब खड़े कितने हुए वो नहीं देखता है, बैठे कितने रहे उस पर उसकी ज्यादा दृष्टि जाती है! तो ब्रह्मा और विष्णु नहीं खड़े हुए तो उसकी कोई ज्यादा चिंता दक्ष को न हुई। लेकिन मेरा दामाद शंकर खड़ा नहीं हुआ! बहुत बुरा लगा दक्ष को। जब बड़ा अधिकार मिला तो दक्ष को मन में अहंकार उत्पन्न हो गया।

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं।

प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।।

कोई जन्मा नहीं है संसार में जिसको प्रभुता मिलने के बाद मद न आया हो। गर्वचूर है दक्ष महोदय! और उस समय जो दक्ष प्रजापति शंकर का अपमान में जो कुछ बोले हैं आप कभी उसका पाठ कर लेना! दक्ष कहता है, मेरी कन्या सती मृगसावकनयनी है और ये मर्कटलोचन! ये शंकर मर्कटलोचन है! दो आंखों का समन्वय व्यासजी करते हैं वहां मंत्र में। कहां मेरी कन्या की आंखें और कहां ये मर्कट लोचन! जहां जाय वहां भूत को ले जाता है! ऐसे शंकर को असभ्य कहा! मर्कट लोचन कहा! ऐसी बहुत-सी गालियां बकी है! बहुत बोले हैं! फिर उसी सभा में उसने संकल्प कर लिया कि इसका अपमान न करूं, बदला न लूं तब तक मुझे चैन नहीं। और फिर इतना बड़ा यज्ञ का आयोजन दक्ष प्रजापति ने किया। और ये मैत्रेयी-विदुर संवाद की कथा; तुलसी ने वहां से पूरा प्रसंग उठाया है। लेकिन तुलसी का अपना संपादन है। थोड़ी अपनी बात तुलसी रख जाते हैं। तो फिर वो यज्ञ की रचना होती है। बहुत सुंदर यज्ञमंडप बनाया गया आदि-आदि। सब देवताओं को निमंत्रित किया गया लेकिन ये तीन देवों को निमंत्रण नहीं दिया! ब्रह्मा को, विष्णु को और जमाई को तो नहीं ही नहीं! और फिर सब देवता अपने निज-निज विमान में जा रहे हैं। यहां शिव और सती बैठे हैं। सती ने महादेव को पूछा कि भगवन्, मेरे पिता के घर यज्ञ है, हम चलें? तो शंकर भगवान ने कहा कि आपकी इच्छा हो तो आप हो आइये। अब ये विदुर-मैत्रेयी संवाद। उसमें सती जाती है। थोड़े दूर जाय, फिर वापस लौटती है कि मेरे लिए तो सब कुछ मेरा पति है। देखो, ये व्यासव्यवहार देखो! हमने व्यासविचार तो बहुत सुने हैं लेकिन व्यासव्यवहार भी देखो कि व्यासव्यवहार क्या होता है?

सती दुविधा में है। जाती है, फिर होता है कि नहीं, नहीं! फिर लौट आती है। महादेव के चरण दबाने लगती है। तो भोलेनाथ कहते हैं कि देवी, रात में मैं विश्राम करूं और चरण दबाये तो ठीक है, लेकिन दिन में! तो कहे कि नहीं, पतिव्रता का धर्म होता है। लेकिन भोलेनाथ भी बड़े विनोदी है। महापुरुष बड़े विनोदी होते हैं, आनंदी होते हैं, प्रमोदी होते हैं, संवादी होते हैं। केवल विवादी नहीं होते। भोलेनाथ ने कहा कि देवी, ऐसा नहीं लगता है कि आज तुम ज्यादा नारीधर्म निभा रही है? सती सोचती है कि ये प्यार से शायद राजी हो जाये ये मेरे बाप के घर आ जाये और बिगड़े हुए संबंध को ठीक कर लेगा। बेटी बहुत चाहती होती है कि दोनों पक्ष जुड़े रहे। लेकिन जब बेटी के हाथ से चीज चली जाती है तब मजबूरी कुछ गलत निर्णय

हम अपना दर्शन पेश करते हैं कि नदी सागर को मिलने के लिए दौड़ती है। लेकिन कोई नदी से बुलवाये कि तू क्यों दौड़ती है? तो नदी शायद कह सकती है कि सागर मिले न मिले, इससे मेरा कोई ताल्लुक नहीं है। मेरा स्वभाव है बहना। सहज बहना जीवन है। तो सरिताओं पर हमारा आरोप हो सकता है कि सागर को मिलन के लिए दौड़ती है। यदि सरिता से बुलवाया जाय तो शायद कहेगी कि बहना मेरा सहज स्वभाव है। और बहती है तब भी बीच में गड्ढा आयेगा तो अतिक्रमण नहीं करती। पहले उसको भर देती है फिर आगे जाएगी। आगे जाने के लिए बाध्यता है कि बीच में जो अभावग्रस्त आये उसको भरो।

करा देती है। और फिर करे भी क्या? तो फिर वो चली। तब शंकर ने नंदी को बुलाया। तुम जाओ, सब सामान जुटाओ और सती को आदर के साथ ले चलो। जाते हैं यज्ञ में। सती आई। उसकी सभी बहनें आई है। तुलसी वहीं से एक न्याय पकड़ते हैं।

भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता।

बहन लोग ताना मारती है। जब समय बदलता है न तो सब बदल जाते हैं। बहन लोग, मेरे पति के बारे में आपको गैरसमझ है। देखो, कितना बचाव करती है! मेरे पति व्यसनी है, कुबूल। लेकिन उसको गांजा-धतूरा का व्यसन नहीं है, संसार के भय को तोड़ने का ये व्यसन लेकर बैठा है। लेकिन समाज में ये सब रुठ जाये लेकिन एक पात्र ऐसा है, माँ नहीं रुठती। प्रेम से माँ दौड़ी। सती को गले लगा ली। पिता के पास सती जाती है तो दक्ष ने कुशलता भी नहीं पूछी! मुंह फेर लिया! और दक्ष के आदेश के कारण सब लोगों ने सती का अपमान किया। और यज्ञ मंडप में जाती है तो सभी देवता बैठे हैं। सबका अपना-अपना स्थान दिया गया है। सबकी पूजा हो रही है। और शंकर का कहीं स्थान तक नहीं! हृदय जलने लगा। सभी सभासदों को उग्र स्वर में संबोधन करती है सती, इस सभा में जिन्होंने

शिवनिंदा की है अथवा तो सुनी है उसको भलीभांति फल मिलेगा! योगाग्नि में अपने पूरे देह को समाविष्ट कर देती है। शिव को पता लगा कैलास पर कि ऐसा हुआ है! वीरभद्र नामक गण प्रगट हुआ है वहां मैत्रेयी-विदुर संवाद में। तुलसी उसको 'वीरभद्र करि कोप पठाये......' वीरभद्र को भेजते हैं और फिर जो रहा-सहा वीरभद्र ने पूरा कर दिया! फिर भगवान शंकर सती के विरह में दुःखी है। कहीं भगवान की कथा चलती है तो चुपचाप कथा सुनते हैं। कोई जिज्ञासु मिले तो कथा सुनाते हैं। सती के वियोग में दुःखी है शिव। और उसके बाद भगवान शंकर समाधि में बैठ जाते हैं।

यहां ताडकासुर नामक एक राक्षस पैदा होता है। दैवीसमाज को बहुत पीड़ित करता है। सब देवता ब्रह्माजी के पास जाते हैं कि कुछ करो। ब्रह्मा ने कहा, शंकर का बेटा ही ताडकासुर को मार सकता है। शंकर को आग्रह किया आप ब्याह करो। और फिर भगवान भी आदेश दे देते हैं कि आप शादी करो और भगवान शंकर परमात्मा को हां कह देते हैं कि मैं शादी करूंगा। यहां पार्वती के रूप में सती परिवर्तित हो गई थी नगाधिराज हिमालय की बेटी बनकर, शैल की शैलजा हो चुकी थी। अपने पति को पाने के लिए उसने बहुत बड़ी तपस्या की। परमात्मा ने वरदान दे दिया कि तुम्हें शिव मिलेंगे। यहां सप्तऋषि को प्रेमपरीक्षा के लिए महादेव ने भेजा, पार्वती उत्तीर्ण। शिव को कहा, पार्वती आपको पूर्ण शरणागत है, आपको चाहिए स्वीकार कर ले।

पार्वती के प्रेम की कथा सुनकर भगवान शंकर फिर समाधि में बैठ जाते हैं। अब कामदेव को प्रार्थना की कि शिव समाधि में विक्षेप करो। भगवान शिव के मन में क्षोभ पैदा हो गया। तीसरा नेत्र खोला और कामदेव जल गया। संसार में हाहाकार हो गया। तुलसीदासजी ने काम की जो प्रतिष्ठा की है 'मानस' में। मैं तो उनके पदनक्ष पर चल रहा हूं। प्रस्तुति मेरी है, विचार तुलसी के हैं, ये याद रखना। यहां कामदेव की धर्मपत्नी रति ने सुना कि पति जल गया! शंकर के पास पहुंची। आशुतोष महादेव अबला के क्रंदन को देखकर पिघल गये। कहा, रति अब से तेरे पति का नाम अनंग होगा। उसकी कोई स्थूल काया नहीं होगी। बिना शरीर सबके मन में निवास करेगा और बिना शरीर सबको व्याप्त होगा। रति ने कहा, लेकिन मैं स्त्री हूं, मुझे देहधारी पति चाहिए। शिव ने कहा कि थोड़ी प्रतीक्षा करनी होगी।

जब जदुबंस कृष्न अवतारा।
होइहि हरन महा महिभारा।।
कृष्न तनय होइहि पति तोरा।
बचनु अन्यथा होइहि न मोरा।।

रति शिव की बानी सुनकर संतुष्ट हुई। दो पंक्ति में तुलसी ने पूरी कृष्णकथा रति को सुना दी। दोनों कथा के प्रवक्ता शिव है, रामकथा और कृष्णकथा। और 'मानस' में दोनों का संदर्भ है। लेकिन रामकथा व्यासरूप में कही; कृष्णकथा समासरूप में कही। व्यासपीठ दो प्रकार की होती है। व्यासपीठ का एक स्वभाव है, समास भी कर सकती है और वो विस्तार भी कर सकती है। और आज नई-नई चेतनाएं जो खोज करती है वो नई-नई बात अपने पास लाती है, मुझे लगता है कि वो सब समासपीठ उभर रही है।

तो बाप! रति को संतोष हुआ। कृष्ण के जन्म की पूरी कथा दो पंक्ति में सुना दी। और यहां भगवान शंकर रति को वरदान दे चुके हैं। प्रसन्न वदन महादेव बैठे हैं। स्वार्थी देवता ब्रह्मा की अगवानी में आ गये। पृथक्-पृथक् प्रशंसा करने लगे और कहा कि महाराज, आपका ब्याह हो। किसीकी बारात में जाने का अवसर नहीं मिला है! आप

ब्याहो तो हम सब आनंद करे! शंकर समझ गये! समजीने छेतराय ए महादेव अने समजणपूर्वक बीजाने छेतरे ए देव। होंशियारीथी नेटवर्क बनावीने बीजाने शीशामां केम उतारी देवा ए देव! कवि काग ने एक कविता लिखी-

होंशियारीनी गांसडीओ सहुने बंधवजे,
पण छेतराजे समज्या छतां तुं एकलो.
चौद रत्नो मंथननां विष्णुने दई देजे,
शिव थाजे सागर किनारे एकलो.

देव! आप भूले ना, आप देव है, मैं महादेव हूं! जगमंगल के लिए मैं शादी करूंगा। महादेव ने हां कर दी। स्वार्थी देवता लोग सब अपनी-अपनी तैयारी में पड़ गये। पूरी जोगी जमात बनी है। बारात चली। शंकर के गणों ने शंकर को शृंगार किया। नंदी की सवारी हुई। भूत-प्रेतों के झुंड-झुंड आ गये! भूत-प्रेत नंदी पर नृत्य कर रहे हैं! कौतुक-विनोद रास्ते में हो रहा है। शिव और उनके गण हिमाचल राजभवन तक पहुंचते हैं, जहां महाराणी मेना, पार्वती की माता सखीओं के संग दुल्हे का स्वागत परिच्छन करने के लिए खड़ी है। और महादेव नंदी पर बैठे द्वार पर आये! और महाराणी मेना दुल्हे की आरती उतारने गई ही और विकट वेश महादेव को देखते ही उमा की माता मूर्छित हो गई! मूर्छित महाराणी मेना को सखियां निज मंदिर में गर्भगृह में ले जाती है।

सप्तऋषि, नारद, हिमाचल सब आ गये। नारद ने सबके संशय को मिटा दिया। घर में शक्ति है, सामने शिव है लेकिन जब तक नारद जैसा कोई बुद्धपुरुष पर्दा हटाकर हमें समझाये नहीं तब तक संशय मिटता नहीं है। सब पार्वती को प्रणाम करने लगे हैं। ये तो जगत की माँ है। हमारा भाग कि हमें बेटी बनकर गौरव प्रदान किया। महादेव मंडप पर आये हैं। नगाधिराज हिमालय ने स्वागत किया। भोलेबाबा विवाहमंडप में ब्राह्मणों को, देवताओं को प्रणाम कर के सुवर्ण सिंहासन पर विराजित हुए हैं। अष्ट सखियां पार्वती को शृंगार कर के ले आई है। जगदंबा पार्वती विराजित हुई। वेद और लोक दोनों पद्धति से विवाह संपन्न हुआ। कुछ दिन बारात रुकी हिमाचल प्रदेश। उसके बाद बिदा की बेला आई। हिमालय का नाम है हिमाचल, अचल। लेकिन कौन बाप अपनी बेटी की बिदा के समय अचल रह सकता है? हिमालय की आंखों में आंसु आये। मेना सजल नेत्र खड़ी है। आज बेटी पतिगृह जा रही है। चाहे विदेहराज जनक हो, अचल हिमाचल हो, कवि कालिदास की शकुंतला का पालक पिता कण्व हो वो भी ढीले होते हैं। हमारी परंपरा में कन्याविदाय बहुत करुण प्रसंग है। अपनी बेटी को विदा दे तब कोई बाप रोया न हो ऐसा मुश्किल है। क्योंकि हमारी परंपरा में बाप-बेटी का रिश्ता एक परम ऊंचाई का रिश्ता है।

पार्वती पतिगृह पहुंचती है। सभी देवताओं ने उमा-महेश्वर का स्तोत्रगान किया। शायद मैं पक्का नहीं कह सकता लेकिन संस्कृत वाङ्मय में जितने अधिक शिवस्तोत्र मिलते हैं, तुलना में अन्य देवताओं के कम है। जहां तक मेरी जानकारी है। कोई विशेष जानकारी मिलेगी तो मैं सुधारा कर दूंगा। और ये सभी स्तोत्र उसी समय गाये गये जब बाराती बनकर आये देवगण शिव को कैलास में विराजित करके स्तोत्रों के साथ बिदा लेते हैं। अद्भुत है। शिव शिव है! हमारी परंपरा निम्बार्की है। कृष्ण उपासना हमारी आचार्य परंपरा है। मैं रामकथा गाता हूं। ये दूसरी धारा है कि दादा ने मुझे रामकथा दी लेकिन कलेजा तो कैलासवाला ले गया! जीभ मेरी मैंने राम को दे दी। मेरी आंखों मैंने गोविंद को दे दी लेकिन कलेजा ले गया कैलासवाला! शिव शिव है। हां, गजब है शिव! शंकर और पार्वती के ब्याह के बाद का जो विहार है, रोज नया है, इसमें सब आ गया। यहां तुलसी बहुत मर्यादा को निभाये हुए हैं। कुछ काल बीता। पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया। षड्मुख कार्तिकेय का जन्म हुआ। तुलसीदासजी आध्यात्मिक अर्थ में कार्तिकस्वामी को पुरुषार्थ कहते हैं। और आदमी का पुरुषार्थ षड्मुख होता है। और ये पुरुषार्थ का प्रतीक कार्तिकेय का जन्म हुआ, जिसने ताडकासुर को निर्वाण दिया। और तुलसी लिखते हैं, गिरिजा रमण का चरित्र समुद्र है, वेद भी उसका पार नहीं पा सकता। मेरे जैसा मतिमंद और गंवार, शिवचरित्र का गायन मैं कैसे करूं?

सहज जीवनशैली का नाम ही झेन है

बाप! आज की कथा के आरंभ में फिर एक बार झेन स्वभाव से भरी समस्त चेतनाओं को प्रणाम करते हुए आप सभी भाई-बहन, अन्य सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। कल सायंकाल की 'भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा:।' सब से पहले आदरणीय भद्रायुभाई, मेरी दृष्टि में ये था, 'भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा:।' हमें बहुत सुख दिया आपने। ऋषिमुनिओं के देश, भगवान महावीर और तथागत का देश, जगद्गुरु शंकराचार्य से लेकर सभी मनीषिओं के देश के कुछ झेन प्रतिभाओं को चुन-चुनकर भद्रायुभाई ने जिस रूप में हमारे सामने दर्शन करवाया। बहुत प्रसन्नता हुई। इसी क्रम में मेरे परमस्नेही तुषारभाई, बड़े मधुरभाषी, मैं भी ऐसी हस्तीओं को बार-बार सुनना चाहता हूं। बहुत सुख दिया। यहां सुख आनंद का पर्याय समझना। और तुषारभाई के बाद मेरे परमस्नेही विनोदभाई ने जो स्वाभाविक अपना अभ्यास और अनुभव दोनों का हमको अनुभव करवाया 'भाव' शब्द को लेकर। गुणवंतभाई के प्रवचन भी; वो भी हमारी इच्छा तो यही थी न कि यहां से ही प्रसारित किया जाय ताकि एक सौ सत्तर देश के लोग जिसको कथा में रुचि है, जो अपने टी.वी. के सन्मुख बैठकर सुनते हैं वो भी सुने और उस तक भी विचार जाये।

युवान भाई-बहनों, मेरा ये कहना है कि खिड़कियां खुली रखो। हमारे यहां भेद की दीवारें तोड़ने की जो बात है, ये कथा के माध्यम से, ऐसे विचारों के माध्यम से हो सकता है। विनोबाजी को किसीने पूछा कि आप देशस्थ ब्राह्मण है कि कोंकणस्थ ब्राह्मण है? विनोबाजी ने कहा, मैं स्वस्थ ब्राह्मण हूं। ये जवाब बड़ा अच्छा है। लेकिन ओशो ने उसका अर्थ बदल दिया! और मैं उसमें भी सहमत हूं। ओशो ने ऐसा कहा कि विनोबाजी ने ये मजाक में कह दिया है। ओशो कहते हैं, जो स्वस्थ होता है वो ब्राह्मण भी नहीं होता है; स्वस्थ होता है वो वैश्य भी नहीं होता है; स्वस्थ होता है वो क्षत्रिय भी नहीं होता है; स्वस्थ होता है वो शूद्र भी नहीं होता है। स्वस्थ होता है ये स्वस्थ ही होता है। एक मनीषी जब उच्चार करते हैं, बोलते हैं तो कितने दरवाजे खुलते हैं!

न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष:
चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।

जगद्गुरु शंकर भी रूखड है! वो कहते हैं, मुझे जातिभेद नहीं है। मुझे वर्णभेद नहीं है। मैं तो केवल 'चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।' शंकराचार्य के लिए तो कहा जाता है कि ये प्रच्छन्न बौद्ध है! विचार तो उसके ऐसे है। सनातन धर्म के एक आचार्य के रूप में शंकराचार्य को बांध नहीं देना चाहिए। जैसे नरसिंह को मैंने कहा कि एक कोम में नहीं बांधना चाहिए। उसको सार्वभौम रखना चाहिए। वैसे शंकराचार्य के विचार, 'यदि मुझे समझ नहीं है तो मेरे लिए शास्त्र कौन काम के हैं? और शास्त्र मेरी समझ में आ गये तो भी शास्त्र मेरे लिए कौन काम के हैं?' शास्त्र का इतना निषेध कर देना! और ये शंकराचार्य कर दे! तब लगता है कि ये सब रूखड है। ये सब आदि-अनादि झेन है। और यहां जो चीन में पाखंड शुरू हो गया! दोरा-धागा शुरू हो गया! चमत्कार शुरू हो गया! वहां के राजा ने सब निकाला फिर। ये झेन स्वभाव नहीं है। झेन स्वभाव तो है, आकाश में चंद्र है, नीचे सरोवर है। उसमें चंद्र का प्रतिबिंब आता है। चंद्र को खबर नहीं है। सरोवर को खबर नहीं है। इतनी सहजता से प्रतिबिंब आता है उसको कहते हैं झेन। चांद को पता नहीं कि मेरा प्रतिबिंब वहां गया और सरोवर को पता नहीं कि मेरे में चांद है। आकाश में पक्षी उड़ता है। पक्षी की प्रतिछाया जमीन पर पड़ती है। आकाश को खबर नहीं है कि पक्षी उड़ रहा है। पक्षी को खबर नहीं है कि धरती पर मेरी छाया है। धरती को स्वयं को पता नहीं है कि मेरे पर किसीकी छाया है। लेकिन फिर भी कुछ है। न होते हुए भी कुछ है, और होते हुए भी कुछ नहीं है, उसको कहते हैं झेन। सहजता सहजता है।

सहज जीवनशैली का नाम ही झेन है। कभी-कभी ये प्राणायाम की प्रक्रिया भी मुझे असहज लगती है। मेरी जो रिधम चलती है वो सहज है। इसका मतलब मैं प्राणायाम के विज्ञान का विरोध नहीं कर रहा हूं। मुझे योगा की आदत नहीं लेकिन योगा बहुत जरूरी है। मैं उसको स्वीकारता हूं। लेकिन मैं योगा नहीं करता हूं। मेरा योगा सब कुछ यहां व्यासपीठ पर हो जाता है। आरोह-अवरोह, कुंभक, रेचक, पूरक, सब कुछ मेरा व्यासपीठ पर हो जाता है। क्योंकि गाउं, उपर जाउं, नीचे जाउं। मुझे पता नहीं है कि मेरी सब एक्सरसाइज़ मेरी व्यासपीठ पूरा कर देती है। और 'चैतर चढे नहीं अने वैशाख उतरे नहीं।' ऐसे ही सत्तर साल निकाल दिये! और आगे भी जो निकले तो निकालने हैं। मरना तो है ही नहीं! मरे मेरी बला! मरना क्या यार! बच्चों, जीवन में कोई भी नाकामियाबी मिले तो 'मर जाये!' ऐसा सोचना ही मत। मोरारिबापू को सुनते हो तो जीने का शिवसंकल्प करो। मरे क्यों? हम अमृत की संतान है। अमृत हमारा बाप है। लेकिन आदमी असहज जी रहा है और असहज जी रहा है इसीलिए मार खा रहा है माया से, विकारों से, समाज की मान्यताओं से! धर्म के नाम से, छोटे-बड़े ग्रूपों से! मुझे भी कितने प्रश्न पूछे जा रहे हैं, 'सहज कैसे हुआ जाय?' अभी-अभी गुणवंतभाई ने जो बातें प्रस्तुत की। एक बड़े उद्योगपति के घर गये तो फिर गुणवंतभाई ने अपना विचार कहा कि इतनी बड़ी इमारत है तो वो कितने दरिद्र होंगे? तो फिर मुझे निदा फ़ाज़ली याद आ गये। साहब! निदा फ़ाज़ली ने कहा, पाकिस्तान के इस्लामाबाद के मुशायरे में मुझ पर मौत की नौबत आ गई थी! मुझे कह रहे थे बापू, मैंने ये दो पंक्ति कही तो कुछ लोगों ने मेरा बहुत विरोध किया था। लेकिन मुझे जो कहना था वो मैं पाकिस्तान में कहकर आया!

बच्चा बोला देखकर मस्जिद आलीशान,
अल्लाह तेरे एक को इतना बड़ा मकान?

तो आपने मस्जिद का अपमान किया ऐसा जरा विरोध हो गया था उसका! तो गुणवंतभाई जब बोल रहे थे ये इमारतवाली बात कि उसमें रहनेवाले कितने दरिद्र होंगे? और खुद ने फिर कहा कि मैं जब झूले पर बैठता हूं तो मैं अपने आपको बहुत सुखी महसूस करता हूं। फिर आपने उत्तरकाशी का जिक्र भी उस दिन किया कि बापू ने एक उद्योगपति के बारे में बातें कुछ कही। बापू के टोन में जरा उच्च स्वर था! तो रहा होगा उच्च स्वर! मेरे साथ ये घटी घटना है तो मैंने कही। वृंदावन की कथा थी। ब्रह्मलीन स्वामी अखंड आनंद सरस्वती वो भी एकाद दिन आये थे। और उसके आश्रम में ही आपका आग्रह था कि बापू यहां रहे तो मैं वहां रहता था और उसका सत्संग का लाभ मिलता महापुरुष का। तो एक बड़े उद्योगपति, अब तो नहीं रहे। और मेरी बायीं और बैठते थे बहुत निकट। व्यासपीठ की निकट बैठते थे। कथा के बड़े प्रेमी थे। भरतचरित्र मैं कह रहा था तो एक-एक पंक्ति पर रो रहे थे!

फिर खबर नहीं क्या हुआ? किसीने कुछ कहा होगा, सुना होगा, जो हो! तो उसने कुछ व्यासपीठ के बारे में ऐसी कोमेन्ट कर दी। उद्योगपति तो थे ही। और कलियुग में सर्वगुण कांचन में आ जाते हैं! जहां सोना होता है उसके पास मानो सब गुण है। तो उसने कहा, बापू कथा तो ठीक कहते हैं, आनंद आता है लेकिन बहुत वैभव में रहते हैं! तो मैंने फिर इसका जवाब दिया था। लेकिन सटीक, ज्यादा विस्तार से जवाब दिया था तिरुपति बालाजी की कथा में, जो एक होल में कथा थी। मैंने उस समय कहा था कि जरूर मेरा वैभव है। मैं गंगाजल पीता हूं, ये मेरा वैभव है। मैं मौन रहता हूं ये मेरा वैभव है। मैं दुनिया में कहीं भी पोथी लेकर जाता हूं, किसीसे एक पैसा नहीं लेता हूं ये मेरा वैभव है। मैं पोथी लेकर जाता हूं, पोथी लेकर लौट जाता हूं। आयोजक मेरे आने-जाने की व्यवस्था, ठहरने की व्यवस्था मात्र करते हैं। और ये मेरा आना-जाना और खाना। मैं रोटी तो मेरे प्रारब्ध की खाता हूं। पवन मेरे हनुमानजी का, जल मेरे गंगाजी का, आपने मुझे दिया क्या?

तो मैंने कहा कि मैं गंगाजल पीता हूं ये मेरा वैभव है, येस। किसीसे पैसा नहीं लेता ये मेरा वैभव है। सीधा-सादा कमरा। टी.वी.-बी.वी. जो हो सब निकालो यहां से! एक स्नानागार हो साथ में मेरा और अब तो कितने समय से मैं बेड पर नहीं सोता, जमीन पर जहां जगह मिले सो जाता हूं ये मेरा वैभव है। मैं खादी पहनता हूं वो मैरा वैभव है। मैं आप सबको प्रेम करता हूं ये मेरा वैभव है। ये कथा गाते हैं, मौज करते हैं ये वैभव है। विद्वानों को सुनते हैं और प्रेरणा प्राप्त करते हैं ये वैभव है। और क्या वैभव? ऐसा वैभव किसीके पास है? जो यहां हमको मिल रहा है ऐसा वैभव कहीं है? नहीं है साहब! क्योंकि ये आनंद है। तो गुणवंतभाई ने ये जो मकानवाली बात कही और उत्तरकाशी की बात आपने स्मृति में रखी। बहुत याद रखते हैं! स्नेहादर है। मुझे भी ये सब बहुत याद रहता है। केवुं-केवुं नवुं आपणने जाणवानुं आमांथी मळे! बुद्धनां जे चार सूत्रो आपे कह्यां- मैत्री, करुणा, उपेक्षा, मुदिता। मने गुणवंताभाईए कीधुं त्यारे आ विशेष माहिती आजे मळी के आ चार सूत्र बुद्धनां छे। मेरे दिमाग में ऐसा था कि यह चार सूत्र पतंजलि ने कहे हैं। गुणवंतभाई ने आज नई दिशा खोल दी बुद्ध का एक विचार पेश करके। आपने पहले मैत्री, फिर करुणा, फिर मुदिता और ये नया अर्थ भी दिया कि उपेक्षा मानी वैराग। चार वस्तु है दुनिया में। सुख, दुःख, पाप और पुण्य। पांचवीं चीज है ही नहीं। अब हम जानते हैं कि पाप करो तो दुःख मिलता है। पुण्य करो तो सुख मिलता है। ये हमारी सामान्य धारणा है कि ये भाई सुखी है, पुण्य किये होंगे। ये दुःखी है, पाप किये होंगे। अब है तो है! दुनिया में पाप भी है, पुण्य भी है; सुख भी है, दुःख भी है; तो अब क्या करे, छाती पिटे? रोये? मथ्था फ़ोड़े? करना क्या? करना इतना है कि इन चारों का जीवन में उपयोग कैसे कर दिया जाय, तो जीवन में प्रकाश आएगा। मेरे युवान भाई-बहन, दुनिया में कहीं भी दुःख देखो, परमात्मा करे दुःख न रहे लेकिन ये संभव नहीं है। तुलसी की एक चौपाई है-

सुख दुख पाप पुन्य दिन राती।

ये सटा हुआ संसार है। सबसे मिला हुआ संसार है। तो दुनिया में जहां दुःख देखो वहां करुणा करो। डांटो नहीं कि तेरे करम खराब होंगे, तूने ये किया होगा! एक तो ये बेचारा गड्ढा में गिर चुका है और फिर तुम डांटो! और क्या समाधि दे देनी है उसको? इससे करुणा करो। समाज में दुःख है तो हमें चाहिए करुणा करे। समाज में कहीं भी सुख देखो उसके साथ मैत्री करो। अब जरा ध्यान देना कि सुखी से तो मैत्री सब करना चाहते हैं। किसीके पास सुख है तो इनके साथ तो सब परिचय निकालते हैं! जहां दुःख देखो वहां करुणा करो। अपना हो या पराया हो। करुणा भेद नहीं रखती है। शंकर भूत को भी बिठाते हैं अपने पास और जो अभूतपूर्व व्यक्तित्व है ऐसे ऋषिमुनियों को भी बगल में बिठाते हैं। करुणावतार शंकर सबके साथ भेद किये बिना करुणा करते हैं। और जहां भी सुख देखो उसके साथ मैत्री करो। मेरा मतलब जिसके साथ आपकी सच्ची मैत्री होगी तो तुम्हारा मित्र सुखी होगा तो आप दुगुने सुखी होंगे भीतर से। तो ही मैत्री। लाभ लेने के लिए नहीं। मेरा मित्र बड़ा हो गया है उसके साथ वो जोड़ो, मैत्री करो। क्योंकि मित्र होता है उसको कभी दुःख पड़े हम चाहते नहीं। मित्र के दुःख से हम दुःखी होते हैं। और पुन्य देखो, कोई अच्छा सत्कर्म करता है, कोई दान देता है, कोई अस्पताल में गरीबों को सारवार देता है, कोई सबको लाभ मिले विचारों का ऐसा

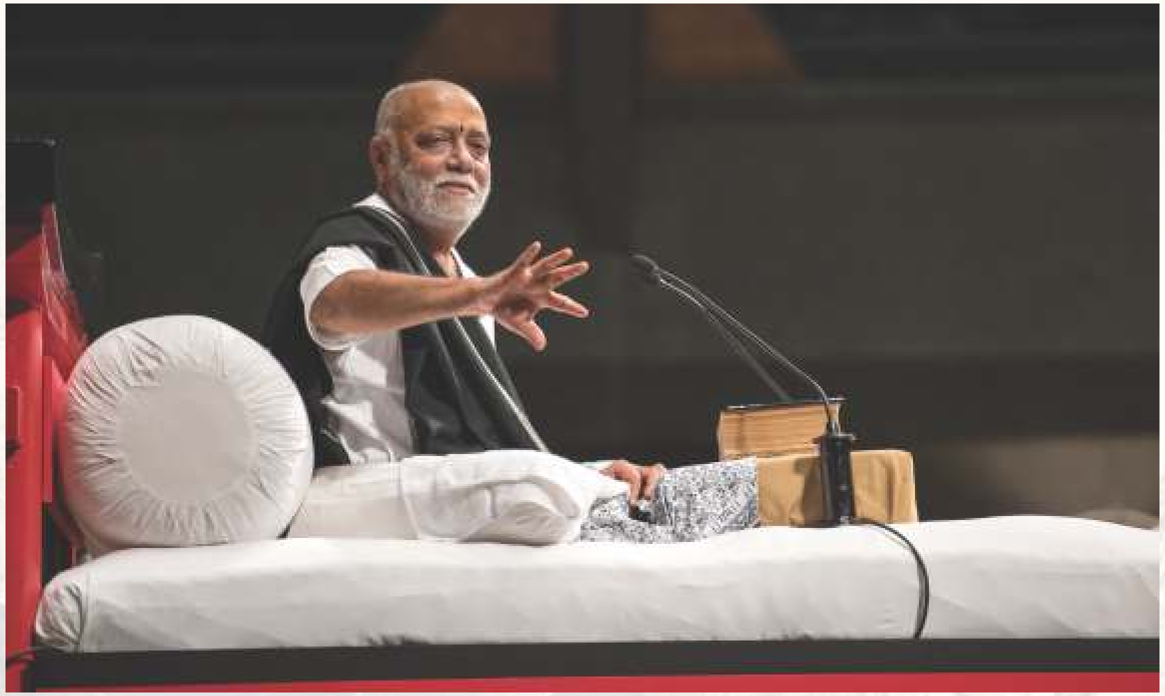

कोई यज्ञ बना लेता है; ऐसे जहां पुन्यकर्म देखो वहां मुदित होओ। मुदिता मानी प्रसन्नता। सब मुझे कहते हैं, बहुत सुंदर व्यवस्था है। ये मुदिताभाव है। जहां भी पुन्य देखो वहां मुदित रहो। और आखिरी सूत्र बहुत महत्त्व का कि जहां पाप देखो वहां उपेक्षा करो। मतलब? पापी की उपेक्षा नहीं, पाप की उपेक्षा करना। पापी को धक्का नहीं देना है। बेचारा मजबूरी में कोई भूल कर गया तो ये भूल मैं कभी न करूं। उसकी हम उपेक्षा करे कि ये पाप हम न करें।

मैं जो यहां बातें करने आया हूं वो मूल जो झेन के स्वभाव की बातें करने आया हूं। मुझे भी बहुत से पूछ रहे हैं कि इसके बारे में विधि क्या है? विधि है ही नहीं। इसमें कोई मारग ही नहीं है। क्या विधि? न कोई मारग है, न कोई विधि है, न कोई उपलब्धि है। बस सहज। उसमें कोई विधि नहीं होती है। कोई सिद्धांत नहीं होता है। आकाश में उड़नेवाले की विधि होती है कि पंख ये करो, ये करो? स्वयं जिसमें हमें उड़ना है इसमें कोई विधि नहीं है। जिसमें हम खो जाये इस गेब में कौन विधि? सोचो। सहज। ये शब्दकोश का अर्थ मैं आपके सामने पेश करूं। मुझे हमारे गुणवंतभाई साधु सावरकुंडलावाले ने आज ही उसका एक टिप्पण रखा कि शब्दकोश में 'सहज' का क्या अर्थ है? उसके आधार पर मैं कह रहा हूं। सह+ज। 'सह' का अर्थ है साथ में, 'ज' का अर्थ जन्मना। हम जन्में हैं तब से जो हमारी मूल प्रकृति है। नाम सहज है। आनुवंशिक जिन्स में जो उतरा है। झेन बाद में नहीं आता, झेन जन्म के साथ आता है। जैसे माँ-बाप की शक्लोसूरत जन्म के साथ बच्चे में आ जाती है, जिन्स में आती है। वैसे सहजता। आप कईओं को लाख समझाओ, नहीं सहज होंगे, कट्टर ही रहेंगे क्योंकि उसके जिन्स में कट्टरता आई है! उसके लिए कोई विधिविधान नहीं करवाना पड़ता, जप-तप नहीं करवाना पड़ता है।

ठीक है, विज्ञान का आदर करना चाहिए। इक्कीसवीं सदी में हम है, आदर करना चाहिए, अवश्य। लेकिन बिलकुल प्राकृतिक रूप से बच्चा जन्मता था उसमें भी फ़र्क होता है। और आज आप जब चाहो तब बच्चा पैदा करवा लेते हो कि हमें इस तारीख को इस समय पर करवा दो तो डोक्टर कर देते हैं लेकिन ये सहज नहीं है! और विज्ञान का लाभ सही रूप में हो तो लेना चाहिए। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। आपको ऐसा नहीं लगता कि जो हमारी नोर्मल प्रसूति, परमात्मा ने जो हमको रंग दिया है, जो हमें रूप दिया है वो हमारी सहजता है। आप प्लास्टिक सर्जरी करवा लो! चेहरा इधर-उधर करवा लो! हम ये क्यों करते हैं? विज्ञान की हर एक खोज उपयोगी नहीं है! क्षीर-नीर का विवेक रखकर जितना चाहिए इतना उपयोग करो। ये जरूरी है। विज्ञान के साथ विवेक बहुत जरूरी है। बच्चा पैदा हो उस समय माँ को पीड़ा हो ये जरूरी है। पेईन किलर दे दी जाय कि पीड़ा महसूस ही न करे! जितना आवश्यक हो, मैं विज्ञान का अनादर न करूं लेकिन कुछ असहजता आ गई! आज का विज्ञान जो फायदाकारक हो उसके मुताबिक चलो। लेकिन सहज तो नहीं है। लेकिन परिवर्तन जरूरी है। बैल से ही खेती हो ये आग्रह छोड़ना चाहिए। आदमी नया होना चाहिए। इसमें क्या बुरी बात है लेकिन कुछ बातें बिलकुल सहज को हम असहज न कर दे। सहजता जरूरी है।

ये सितार बजातें हैं तो सितार उंगलियों से ही बजना चाहिए। अब उस मशीन बज जाये! ठीक है, अच्छी बात है चलो, बाकी जीवंत टच हो उंगलियों का और फिर जो संगीत निकले वो सहज है। सहज जो दर्शन है उसको झेन कहते हैं। और आपको पता होना चाहिए कि झेन स्वभाव ने जापान की चित्रकला पर भी प्रभाव डाला है। जापान की शिल्पकला पर उसका प्रभाव डाला है। जापानीझ संगीत पर भी प्रभाव डाला है। एक समय था, कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर की स्वाभाविक सहजता ने 'रवीन्द्रसंगीत' पैदा किया था। जापान की हर कला के पिछे झेन पड़ा है। प्रत्येक कला को आध्यात्मिक टच है; चेतना का संस्पर्श है।

तो मैं स्वीकारता हूं। अब मैं विज्ञान की आलोचना करूं तो साहब ये माईक न होते, लाउडस्पीकर न होते तो मुश्किल होती। इतने लोग तो शायद मुझे सुन भी ले लेकिन जहां हजारो लोग बैठे होते क्या करते? विज्ञान की आरती उतारनी चाहिए कि तेरे कारण विचार वहां तक पहुंचा। ये विज्ञान का स्वीकार अच्छा है। लेकिन कुछ बातें जो सहज है उसको धर्मांतरित नहीं करनी चाहिए। मैंने कल आपको कहा था कि झेन स्वाभाविक जो धारा है उसको पहचानने के लिए बहुत-से संकेत किये गये हैं। ये बहुत कुछ विपुल है। बहुत कुछ बाद में एड किया गया है। कालान्तर में झेनधारा में भी कर्मकांड आ गया, चमत्कार आ गया, प्रलोभन और भय आ गया। और इसीलिए एक समय चीन के सम्राट ने ऐसे लोगों को प्रताडित किया था, निकाल दिया था।

तो कल मैंने कहा था कि झेन स्वभाव की जो एक धारा है उसके बहुत-से बिंदु है। और बाद में मुझे लगता है कि इतना बड़ा सब बिंदु आ गये होंगे, आई थिन्क। मुझे लगता है कि कुल मैंने जो निकाला है वो सात बिंदु है। जिसमें कल मैंने एक स्पर्श किया था। झेनधारा का एक बिंदु है चिरंतन यौवन। झेन की सहजता जो सीख लेता है, वो सहजता जिसको सहज हो जाती है वो कायम युवान रह सकता है। देह की बात छोड़ो। देह के अपने धर्म होते हैं। तुलना में मैंने सुना है कि जापानीझ लोगों की उम्र ज्यादा होती है। लेकिन शरीर पर तो असर होती ही है। लेकिन भीतरी चिरंतन युवानी, एक ऐसी सहज युवा चेतना जिसको कभी बूढ़ापा न आये। जिसको वृद्धावस्था का विकार छू न सके। आदरणीय बापा (नगीनबापा) की उम्र नाईन्टी फाईव है। आपको लगता है कि इसके विचार बूढ़े हैं? विचार युवान है। मैं सत्तर साल पूरा करने में हूं। आपको लगता है कि मेरे विचार बूढ़े है? जो सहज है वो बूढ़ा नहीं हो सकता। बोडी बूढ़ी हो सकती है, उसकी चेतनाएं कैसे बूढ़ी हो सकती है? इसी प्रवाह में कल निवेदन हो रहा था कि जिसस कहते हैं, रोज नया वस्त्र पहनो। ये मेरा संकेत है आप सब युवानों के लिए कि मैं रोज पोथी का वस्त्र बदल देता हूं। क्यों? ये चौबीस घंटे में क्या पोथी गंदी हो जाती है? कोई यहां हाथ पोंछ लेता है? न को। और मैं यहां बदलता ऐसा नहीं। कथा न होती तब भी सुबह ठाकोरजी की पूजा करूं, मैं मेरी पोथी खोलूं, मैं एक-दो चौपाई इसमें से पढ़ लूं फिर मेरे 'मानस' के गुटकों से पाठ करूं लेकिन फिर वहां भी मैं रोज वस्त्र बदल देता हूं। इसका मतलब ये संकेत है कि विचार रोज नये हो। और मैं कोई तुलना और आलोचना के लिए नहीं बोल रहा हूं। जिस चित्त में द्वेष होता है वो आलोचना करता है, वो निंदा करता है लेकिन जिस चित्त से द्वेष निकल जाता है वो निंदा नहीं करता है, निदान करता है। ये निदान है, निंदा नहीं है। निंदा बुरी चीज है। बुद्धपुरुष निदान करता है, निंदा नहीं करता है। तो आदमी रोज नया होना चाहिए।

युवान भाई-बहन, बिलकुल सहज-सरल बातें है, पंडितों ने जटिल कर दी है! शायद तथाकथित झेन मास्टरों ने ही जटिल कर दी! तो सात सूत्र है। और मुझे लगता है कि 'रामायण' के ये सात कांड है बिलकुल सरल, सहज। कुछ करने की जरूरत नहीं है झेन में। एक, वास्तविक जीवन; प्रेक्टिकल जीवन। उसको ओर सरल करूं तो दंभमुक्त जीवन। तुम जो हो, हो। वास्तविक। कृष्ण अर्जुन को सहज छोड़ता है। कहने की सभी बात कहने के बाद कहते हैं, 'यथेच्छसि तथा कुरु।' जा, मुझे जो लगा तुझे सुना दिया। अब तेरी सहजता के अनुसार तुझे जो अच्छा लगे तू कर। मेरा कोई दबाव नहीं। वास्तविक जीवन, हम जैसे है। जैसे हो उसी धारा में रहना सीख लोगे तो हर अवस्था में तुम खूबसूरत दिखोगे। हर अवस्था के रंग को सहज कुबूल करो। मैं पहले बाल रखता था तो मुझे अच्छा लगता था। अब मैं बाल नहीं रखता हूं तो ये मुझे लगता है कि ये बहुत अच्छा है। सीख लो वास्तविक जीवन। जिस समय जो सहज कुदरत का वरदान हो उसीमें खुश रहो। इसके लिए पूजापाठ करने की जरूरत नहीं है; विधि-विधान की जरूरत नहीं है। सहज धारा। वास्तविक जीवन। दंभमुक्त जीवन। और किसीने किया ऐसा तो कभी करना ही मत। तुम अपनी निजता में रहो। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अनूठा और अद्वितीय है। स्वीकार करना चाहिए, उसको कहते हैं वास्तविक जीवन। ये झेन स्वभाव। हम कितना अवास्तविक होते जा रहे हैं ना? ठीक है, थोड़ा शिष्टाचार समाज के बीच में रहते हैं तो करना पड़ता है, बाकी स्वधर्म छूट जाये वो ठीक नहीं। परधर्म भयावह है। वास्तविक जीवन झेन स्वभाव का बिंदु है। जैसे हो वैसे रहो।

दूसरा, सर्जनात्मक प्रवृत्ति। झेन स्वाभाविक धारा आदमी को निष्क्रिय और प्रमादी होने की बात नहीं करती। पूरी धारा सर्जनात्मक है। कुछ न कुछ वो सर्जन करते हैं। चित्र करते रहते हैं; शिल्प करते रहते हैं; कविता लिखते रहते हैं; हाईकु लिखते रहते हैं; नृत्य करते हैं। और कितनी शालीनता से! कल वो दोनों बेटियों ने नृत्य पेश किया तो स्टेज पर चप्पल से चली नहीं। कुछ बातें तो हिन्दुस्तान को बहुत सीखने जैसी है, निःशंक, निःशंक। तीसरी बात, पूर्ण सजागता। सहज झेनभाववाला आदमी निरंतर सावधान होता है। और इस परिप्रेक्ष्य में निरंतर जागृति की बात आती है तो मुझे मेरा लक्ष्मण दिखता है कि लक्ष्मण भी आदि-अनादि झेन भाव में है। कृष्णमूर्ति जिसको अवेरनेस कहते हैं; सजगता। निरांत की अवस्था में रहना झेन स्वभाव है। लेकिन इसमें सूक्ष्म खतरा है! निरांत तो निकलती है अंदर से। निर्जन स्थान में बैठने से भी निरांत नहीं आती। और सहजता हो तो भरी बाजार में भी तुम असंग हो। फिर जीवन की प्रत्येक वस्तु में सहज सादगी। वेश, वाणी, वर्तन, आहार, एक-दूसरे के साथ व्यवहार में सादगी। गोस्वामीजी कहते हैं-

सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथा लाभ संतोष सदाई।।

और आखिरी जो है वो चिरंतन यौवन, नितनूतनता। आदमी रोज नया होना चाहिए। चिंतन नया होना चाहिए। तो ये है 'मानस-सहज।' ये जीवन की सहजता के मेरे चुने हुए बहुत से बिंदुओं में से ये सात मुझे लगता है कि मेरे लिए तो ये पर्याप्त है। आपको भी इससे फायदा हो तो सोचियेगा।

बाप! कल भगवान राम की कथा में शिव और पार्वती के विवाह की कथा मैंने आपके सामने गाई; कुछ 'भागवत' के न्याय से, उसके बाद 'रामायण' के क्रम में। शिव और पार्वती कैलास के वटवृक्ष के नीचे शिव सहज बिराजमान होते हैं। पार्वती भगवान शंकर को प्रश्न करती है कि प्रभु, जिस राम की लीला को देखकर मुझे संदेह हुआ उस राम की कथा मुझे आप सुनाइए। प्रसन्नता व्यक्त कर शिव ने कहा, देवी, आप धन्य है। आप बड़ी उपकारक है विश्व के लिए कि आपने रघुपति की कथा पूछी। रामजन्म के कई कारण होते हुए भी राम किसी कारण से बाध्य नहीं है। उसकी निज इच्छा से सब चलता है। रावण इस जगत पर इतना अत्याचार करने लगा कि पृथ्वी त्राहिमाम पुकार उठी। गाय का रूप लेकर पृथ्वी ऋषिमुनि और देवताओं के साथ ब्रह्मा के पास जाती है। ब्रह्मा की अगवानी में समूह में प्रभु को पुकारा गया। आकाशवाणी हुई, वैसे कोई कारण नहीं फिर भी कई कारणों से मैं अंशों के साथ धरती पर रघुकुल में अवतार लूंगा। प्रतीक्षा करो।

पूज्यपाद गोस्वामीजी लिये चलते हैं हमें अयोध्या। अयोध्या, रघुवंश का शासन। वर्तमान सम्राट महाराज दशरथजी है। दशरथ के रूप में मानो वेदों के तीनों कांड मूर्तिमंत हुए हैं। ऐसे महापुरुष दशरथ है। कौशल्यादि प्रिय रानियां है। लेकिन एक समस्या महाराज के जीवन में है, पुत्र नहीं है। अब ये बात मैं गुरु के सिवा किसको कहूं? मैं हर वक्त कहता हूं कि जब कहीं से भी समस्या का समाधान न मिले तो जहां अपनी श्रद्धा हो, हमारा पूरा भरोसा जिनके चरणों में हो उसीके पास जाना और अपने दिल की बात वहीं करना। घर की चीजें खानदान लोग बाजार में बेचते नहीं हैं! वैसे जीवन की कुछ ऐसी समस्यायें होती है वो गुरु के बिना इधर-उधर कहियो मत। क्योंकि वो ही एक सच्चा ठिकाना है, वो ही एक आस्था का स्थान है। फिर केवल प्रतीक्षा एकमात्र उपाय है। गुरु संसार में इसीलिए होते हैं कि शिष्यों की समस्याओं का हल हो। क्योंकि भजन तो ओलरेडी वो करके आये है। यहां आकर वो भजन करते हैं तो हमें प्रेरणा देने के लिए। गुरु को क्या ध्यान करना? किसका ध्यान करना गुरु को? शंकर किसका ध्यान करे? हमें प्रेरणा देने के लिए करते हैं। ओलरेडी समस्त आध्यात्मिक संपदा से बुद्धपुरुष एडवान्स में संपन्न हुआ करते हैं।

दशरथजी गुरुद्वार गये। अपनी बातें पेश की, मुझे पुत्र नहीं है। गुरु ने कहा, एक यज्ञ करना होगा। शृंगी को बुलाया। पुत्रकाम यज्ञ किया है। आख़िरी आहुति डालते ही यज्ञपुरुष अग्नि के रूप में प्रसाद का चरु वो खीर लेकर यज्ञकुंड से बाहर आते हैं। वशिष्ठ के हाथ में वो चरु हस्तांतरित करते हैं। और राजा को कहा गया, अपनी रानीओं को जथाजोग बांट दो। कौशल्यादि प्रिय रानीओं को बुलाकर महाराज यज्ञ प्रसाद बांटते हैं। आधा प्रसाद कौशल्याजी को। पा भाग कैकेयीजी को। पा भाग जो एक चौथाई था उसके दो भाग करके प्रसन्नता से सुमित्रा को कैकेयी और कौशल्या के हाथों से दिलवाया। तीनों रानियां इस दिव्य प्रसाद को प्राप्त करके सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी। कुछ काल बीता। हरि प्रगट होने की बेला आई। सगुन होने लगे। वातावरण दिव्य होने लगा। जोग, लगन, ग्रह, बार, तिथि सब अनुकूल हो गया। चर-अचर हर्षजूत हुए हैं क्योंकि भगवान राम का जन्म सुख की जड़ है।

'मानस'कार कहते हैं, त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्लपक्ष, अभिजित, मध्याह्न का समय, लोग भोजन कर के विश्राम करे ऐसा विश्राम का काल। सब देवता भगवान की गर्भस्तुति करते हैं। दुंदुभिनाद होने लगा। 'जगनिवास', पूरे जगत में जिसका निवास है या तो पूरा जगत जिसमें निवास करता है ऐसा ब्रह्म, ऐसा परमात्मा, ऐसा भगवान, ऐसा ईश्वर, ऐसा परमतत्त्व प्रगट होनेवाला है। माँ कौशल्या के भवन में एक प्रकाश होने लगा। देखते-देखते माँ ने पाया कि अपने प्रासाद में मेरे सन्मुख चतुर्भुज विग्रह प्रगट हुआ है। धीरे-धीरे कुछ आकार प्रगट हुआ है।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

माँ को ज्ञान हुआ। प्रभु मुस्कुराये। उसके बाद माँ कहती है, आप आये हो, आपका स्वागत। लेकिन मुझे तो नर रूप में हरि चाहिए। आप चतुर्भुज है, दो हाथ कर दीजिए। प्रभु दो हाथ कर देते हैं। फिर कहा कि मुझे बालक रूप में ईश्वर चाहिए, आप तो इतने बड़े दिखते हैं! भगवान छोटे होते-होते नवजात शिशु की तरह छोटे हो गये। उसको पुष्टि कहते हैं वल्लभाचार्य भगवान की बोली में। ये किसीके साधन से नहीं होता है, ये उनकी कृपा से ही होता है। उसको पुष्टि कहते हैं। भगवान रोने लगे माँ के अंक में। पूरी अयोध्या में जयघोष हुआ। महाराज दशरथजी के कान पर ये बात पड़ी कि आपके घर लाला भयो। राजा परमानंद में डूब गये। बुद्ध के विचार की भूमि, मेरे भोलेनाथ का महिना, मेरे राम का प्रागट्य! सभी को रामजन्म की बधाई हो।

सहज जीवनशैली का नाम ही झेन है। कभी-कभी ये प्राणायाम की प्रक्रिया भी मुझे असहज लगती है। मेरी जो रिधम चलती है वो सहज है। इसका मतलब मैं प्राणायाम के विज्ञान का विरोध नहीं कर रहा हूं। मुझे योगा की आदत नहीं लेकिन योगा बहुत जरूरी है। मैं उसको स्वीकारता हूं। लेकिन मैं योगा नहीं करता हूं। मेरा योगा सब कुछ यहां व्यासपीठ पर हो जाता है। आरोह-अवरोह, कुंभक, रेचक, पूरक, सब कुछ मेरा व्यासपीठ पर हो जाता है। मुझे पता नहीं है कि मेरी सब एक्सरसाइज़ मेरी व्यासपीठ पूरा कर देती है।

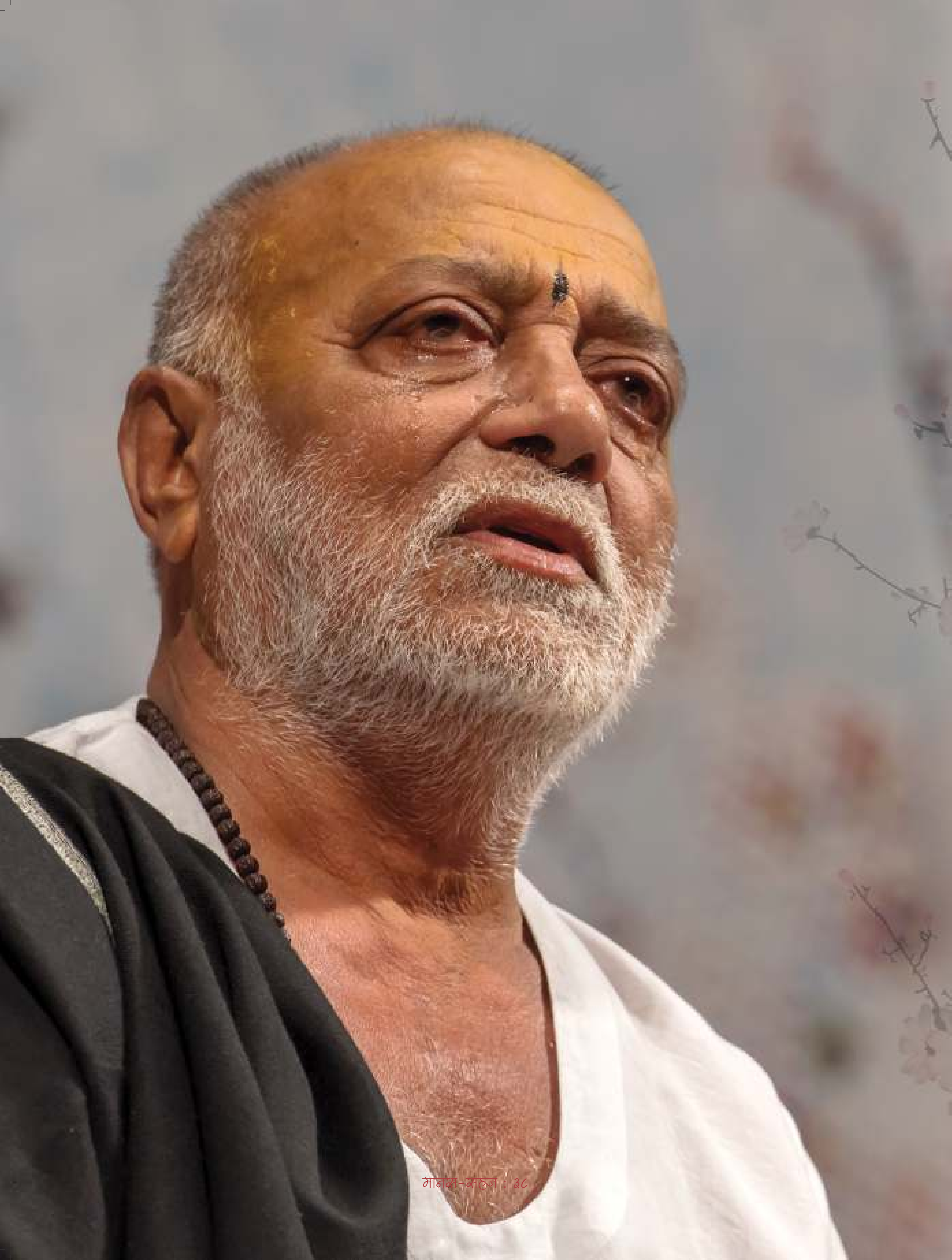

कथा-दर्शन

मैं कथा को महाएकांत समझता हूं।
कथा उधार परिणाम देनेवाली वस्तु नहीं है। कथा आज सुनो, आज हीं आनंद मिलता है।
'रामचरित मानस' स्वीकार का शास्त्र है। यहां सबको स्वीकारा गया है।
हनुमंततत्त्व, तत्त्व के रूप में बिनसांप्रदायिक है।
बुद्धपुरुष निरंतर सावधान रहता है।
बुद्धपुरुष निदान करता है, निंदा नहीं करता है।
बुद्धपुरुष संकेतों से बोध देता है।
किसी बुद्धपुरुष के यहां मिला हुआ प्रसाद तुम्हारे उपवास का फल है।
स्वभाव को परमात्मा भी बदल नहीं सकता; कोई संतपुरुष बदल सकता है।
साधु केवल सिद्धांतवादी नहीं होता।
शिकायती चित्त आध्यात्मिक यात्रा में विफल हो जाता है।
महान सहज होता है कि नहीं वो कहना कठिन है लेकिन सहज कायम महान होता है।
जो सहज है वो ही समर्थ है, जो असहज है वो नितांत असमर्थ है।
सहजता की कोई सीमा नहीं होती। वो तो अनंतयात्रा है।
सहजता वस्त्र नहीं है, वृत्ति है।
सहजता स्वधर्म है, असहजता परधर्म है।
किसीको समझने, परखने के लिए थोड़ा डिस्टन्स जरूरी है।
अनुभव इन्द्रियों का विषय है, अनुभूति आत्मा का विषय है।
विज्ञान के साथ विवेक बहुत जरूरी है।
मारनेवाले अपने ही निकलते हैं, पराये होते ही नहीं।
मोती कितने भी कीमती हो लेकिन उसको धागा न मिले तो बिखर जाते हैं।

सत्संग का कोई यूनिफोर्म नहीं होता, सत्संग युनिवर्सल होता है

बाप! आज के दिन की कथा के आरंभ में पुन: एक बार करुणाभरी इस समस्त बुद्ध चेतनाओं को प्रणाम करते हुए आप सभी मेरे भाई-बहन, अन्य सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। और मेरी गुणातीत श्रद्धा के मुताबिक आज आंतर्ब्रह्मांडी दिन है। जन्माष्टमी की सबको बहुत-बहुत बधाई हो। आज का दिन कोई एक मूलक का दिन नहीं है। कोई एक मजहब या कोई एक धर्म का दिन नहीं है। समुचे ब्रह्मांडों का आज दिन है इसीलिए कि जिस विग्रह धारण कर के कृष्ण इस धराधाम पर आये थे उसमें कभी-कभी देखनेवालों ने समस्त ब्रह्मांडों को लटकते हुए देखा है। इसीलिए ऐसे 'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।' को क्योटो की भूमि से मानसिक रूप में वृंदावन की यमुना में गोता लगाकर बांके बिहारी का परदा खुलते ही भीतर से उसका दर्शन करके मथुरा के द्वारकाधीश के चरणों में प्रणाम करते हुए और हमारे सौराष्ट्र के राजाधिराज द्वारकाधीश ठाकुरजी को प्रणाम करते हुए आइए, हम सब आगे बढ़े। पुन: एक बार कृष्ण जन्मदिन की समुचे विश्व को बधाई हो, शुभकामना हो।

झेन की जो स्वाभाविक धारा है उसमें कुछ नियम नहीं है। और मूल झेन स्वभाव में एक सूत्र पड़ा है जो मैं आपसे आज की टोक में, आज की बातचीत में कहना चाहूंगा। छोटा-सा सूत्र है कि जहां नियम है वहां झेन नहीं और जहां झेन है वहां कोई नियम नहीं। इसमें सब कुछ आ जाता है। झेन साधु मजाक में, विनोद में, हंसते-हंसते जो दुनिया के चीलाचालु नियम होते हैं उसमें नहीं चलते हैं। मूल धारा में, मूल में ये लोग लकीर के फ़कीर नहीं दिखते हैं। इसीलिए आप झेन साहित्य, उसके बारे में थोड़ा जाने-पढ़े, कोई अधिकारी महापुरुष से सुने तो आप जान सकते हैं कि ये लोग कभी-कभी मृत्यु वरण करते हैं तो भी बिलकुल नियम से विरुद्ध करते हैं! कई झेन साधु शीर्षासन करके प्राण छोड़ देते हैं। सीधे नहीं मरते ये लोग। मरते भी ऊलटे हैं! कोई बैठे-बैठे मृत्यु का वरण करता है! कोई हंसते-हंसते वरण करता है! कोई नाचते-नाचते वरण करता है! कोई सोये-सोये वरण करता है। बिलकुल ऊलटे! कबीरसाहब की तरह काम करते हैं। अभी-अभी आदरणीय गुणवंतभाई ने कहा कि पूरी दुनिया काशी में मरने के लिए जाती है क्योंकि काशी में मरने से मुक्ति होती है ऐसी एक धर्मश्रद्धा है। काशी को मुक्तिदाता मानी गई है। मैं खुद जानता हूं कि कई लोग आखिरी जीवन काशी में ही बिताते हैं कि काशी में ही आखिरी सांस जाये क्योंकि वहां भगवान भोलेनाथ मुक्ति का भंडारा खोल के बैठा है। जो आये उसको मुक्ति। और शिव को किसीने पूछा कि आप काशी में सबको मुक्ति बांटते हैं तो ये मुक्ति का इतना बड़ा खजाना आपके पास है कहां से? तो कहते हैं-

महामंत्र जोई जपत महेसू।
कासीं मुकुति हेतु उपदेसू।।

शिव कहते हैं, महामंत्र जो राम है उसका जप करने से मैं मुक्ति इकठ्ठी करता हूं और काशी में मरनेवालों को वरदान में प्रदान करता हूं। मेरे गोस्वामीजी 'रामचरित मानस' के 'किष्किन्धाकांड' के आरंभ में कहते हैं-

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न।।

जो ज्ञानखानी है, अघहरनी है, मुक्तिदाता है, जहां शिव-पार्वती निरंतर निवास करते हैं, हे जीव, ऐसी काशी का सेवन तू क्यों नहीं करता हैं? ऐसा तुलसी 'किष्किन्धा' के आरंभ में कहते हैं। 'रामचरित मानस' के सात सोपान एक अर्थ में तो 'सप्त मोक्षदायिका नगरी' ही तो है। 'अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिकापुरी, द्वारावतीश्चैव...' ये सात नगरी यही तो सात कांड है। लेकिन 'मानस' ने मुक्ति को इतनी प्रधानता नहीं दी, जितनी भक्ति को प्रधानता दी; प्रेम को प्रधानता दी। तो पूरी दुनिया काशी में मरती है मुक्ति के लिए। लेकिन कबीर इस नियम को तोड़ना चाहते थे। और मुझे आनंद है कि इसी कारण मेरी व्यासपीठ एक बार नव दिन के लिए मगहर भी हो आई। वहां जाकर हमनें कबीरसाहब को 'साहेब बंदगी' किया। तो जहां नियम है वहां झेन नहीं। जहां झेन है वहां नियम नहीं। लेकिन ये स्वाभाविक झेनधारा जिसमें आती है उसके पीछे-पीछे नियम किंकर बनकर चलते हैं। ये न समझे कि झेन विचारधारा नियम को नहीं कुबूल करती। इसका मतलब ये उच्छृंखल है, ये मर्यादाहीन जीवन जीते हैं? न को। उसके पीछे-पीछे विवेक चलता है। मेरे भाई-बहन, आप मोरारिबापू कह रहे हैं इसीलिए प्लीज़ मान मत लेना। आपकी श्रद्धा, व्यासपीठ के प्रति आपका आदर मैं समझता हूं फिर भी ये आपका अनुभव हो, आपकी दृष्टि उस पर बैठे तो ही उस पर आगे बढ़ना।

'श्रीमद् भागवतजी' में आता है, प्रह्लाद को नृसिंह भगवान कहते हैं कि बेटा, मुझे माफ़ कर देना कि तेरी सहायता में आने में मुझे विलंब हो गया। लेकिन ये मत भूलना कि तेरा बाप हिरण्यकश्यपु तुझे पहाड़ पर से जब गिराता था तब तू ही गिरता था ऐसा नहीं, मैं भी गिर जाता था। ये है समानुभूति। तेरा बाप तुझे जलाता था तब तू नहीं जलता था, मैं भी तो जलता था! इसीलिए मेरे 'रामचरित मानस' ने प्रह्लाद को भगत नहीं कहा है, भगत शिरोमणि कहा है। तो कभी-कभी बुद्धपुरुष बुद्धि के स्तर पर आकर हमारी बुद्धि में क्या चलता है, बुद्धि भटकाव में है कि अटकाव में है उसको जानता है। क्योंकि बुद्धि में ये खतरा है भटकाव का। 'भगवद्गीता' में अव्यभिचारिणी बुद्धि का जिक्र है। तो ऐसे महापुरुष जैसे रामकृष्ण है, कबीर है। किन-किन का नाम लूं? रमण तो रमण है साहब! मैंने वहां भी एक अनुष्ठान कर लिया। जब तक जीवन चले, कोई बुद्धपुरुष का स्थान अल्लाह करे बाकी न रहे! तो ये सब जो प्रबुद्ध चेतनाएं है ये हमारी आत्मा, हमारे बुद्धि के स्तर पर और उसके बाद चैतसिक वो करते-करते हमारे मन के लेवल पर आ जाते हैं।

भगवान कृष्ण को गोपीजनों को रास का दान देना था और महारास में डुबोना था तो कृष्ण के लिए शुक बोलते हैं; उसने मन को स्वीकारा कि मन, तू मेरे पास आ, बिना मन ये नहीं कर पाउंगा। कृष्ण तो अमन है। और जिसके पास जो नहीं है उसकी वो भीख मांगता है। हमारे पास पैसा नहीं है तो हम पैसे मांगते हैं। कृष्ण ने 'गीता' में क्या मांगा?

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव योगमुत्तममास्थित:।।

वो तो 'चिदानंद रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्' है। रासक्रीड़ा के लिए वो मन को स्वीकार करते हैं। बुद्धपुरुष मन के लेवल तक आते हैं। किसीके देह के लेवल तक बुद्धपुरुष पहुंचता है तब उसको समानुभूति शुरू हो जाती है। और बुद्धपुरुषों को बहुत मुश्किल में डालती है समानुभूति। क्योंकि जितना वो तादात्म्य करता है इतना वो

बहुत पीड़ा भोगता है। किसीकी पीड़ा की ठाकुर को समानुभूति रही होगी तब पानी नहीं उतर रहा था! तो मैं ये कहना चाहता हूं मेरे भाई-बहन, जो आदमी मन, बुद्धि, चित्त और हमारी आत्मा तक की समानुभूति करते हैं इसीलिए नियम इस सहजता के गुलाम बनकर पीछे-पीछे घूमते हैं! कोई सहजावस्थावाला ने नियम तोड़ा हो ऐसा कभी आप कह नहीं सकते। वो नियम में रहते नहीं है, नियम छाया बनता है। 'मुक्ति एनी दासी रे...' वहां तक कह दिया। और 'मानस' में भी लिखा है-

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं।
अनइच्छित आवइ बरिआईं।।

मेरे भाई-बहन, झेन में कोई नियम नहीं है और जहां नियम है वहां झेन नहीं है। इसका मतलब नियम न निभाये ऐसा मैं नहीं कहता लेकिन झेन स्वभाव में जो आदमी है उसके पीछे नियम रहेंगे। आपको लगेगा कि ऐसा शालीन, ऐसा विवेकी तो कहीं देखा नहीं हमने। और कल उसने मुझे पूछा कि 'बापू, सहजता पहले आती है फिर विवेक आता है कि विवेक आता है तो सहजता आती है?' प्रश्न अच्छा था बेटा! मुझे अच्छा लगता है कि ये लोग जो इंग्लिश मीडियम में पढ़े हैं, बोर्न कई दूसरे देशों में हुए हैं और कथा सुनते-सुनते इनके मनमें ऐसी जिज्ञासा होती है! मैं स्वागत करता हूं।

बेटा! सहजता और विवेक में थोड़ा अंतर है। जिसमें सहजता आ जाती है उसमें विवेक धीरे-धीरे आ ही जाता है। पहले मुझ में विवेक आ जाये, पहले मुझ में विवेक आ जाये, इसमें समय बरबाद मत करना प्लीज़! सहज जीओ। विवेक का प्राप्त होना संग से होता है। सहजता जन्मजात होती है। विवेक जन्मता है संग से। संग मीन्स यहां सत्संग। और 'मानस' में दो-टूक इसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं ऐसी सूत्रात्मक क्या मंत्रात्मक पंक्ति लिखी गई है कि विवेक को प्राप्त करने का एड्रेस क्या है? विवेक का घराना क्या है?

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

तो विवेक सत्संग से प्राप्त होता है। और सत्संग हरिकृपा से प्राप्त होता है। हरिकृपा मन-कर्म-वचन से चतुराई छोड़ने से प्राप्त होती है। इसको मैं ओर सरल करने की कोशिश करूं तो बच्चा सहज होता है, उसमें विवेक नहीं है। ये बेड में, माँ की गोद में कहीं भी मल-मूत्र कर लेता है लेकिन जैसे-जैसे बेटा बड़ा होता है, माँ को निकट से समझने लगता है, बाप को समझने लगता है, कंपनी अच्छी मिलने लगती है और बच्चे में शालीनता आने लगती है।

सत्संग का मेरा मतलब, मैं बार-बार बोला हूं, बोलता रहूंगा, प्लीज़! मैं जब तक हूं तब तक तो ठीक है उसके बाद भी ऐसा अर्थ मत करना कि कोई व्यासपीठ पर बोले और हम सुने उसको ही सत्संग कहे। सत्संग एक कविता भी हो सकती है। सत्संग एक नवलकथा भी हो सकती है। सत्संग एक छोटा-सा लेख भी हो सकता है। सत्संग एक चित्र भी हो सकता है। सत्संग एक शिल्प भी हो सकता है। सत्संग कोई राग भी हो सकता है। सत्संग एक नृत्य भी हो सकता है। सत्संग मौन भी हो सकता है। सत्संग अश्रु भी हो सकता है। सत्संग आश्रय भी हो सकता है। उसको संकीर्ण मत करो। हमारा 'अस्मितापर्व' क्या है? सत्संग है। हमारा 'संस्कृतपर्व' क्या है? सत्संग है। हमारे 'हनुमानजयंती' का उत्सव क्या है? सत्संग है। ये सब सत्संग है। मैं इन आदरणीय वडीलों के साथ बैठता हूं, फोन करता हूं तो भी कहता हूं, कोई नवा लिखा हो तो मुझे सुना दो ना! मेरे लिए सत्संग है साहब! सत्संग का कोई यूनिफोर्म नहीं होता, सत्संग युनिवर्सल होता है। एक बहता झरणा सत्संग नहीं है तो रामकथा आपका सत्संग नहीं हो सकती।

झेन में तो ऐसे ही सत्संग माना है कि घडे में चांद देखा और प्राप्ति हो गई। लकड़ी का भारा उठाया तो प्राप्ति हो गई। इसका मतलब ये नहीं कि कथा सत्संग नहीं है। लेकिन सत्संग मात्र इतने में ही आ जाये! वृंदावन में इन गंवार लोगों के पास कौन व्यासपीठ पर बैठा था? किसने सितार, हार्मोनियम, तबला लिया? कृष्ण उदारता को जब गोपीओं ने गलत अर्थ में ले लिया, उसको सौभग मद आया, कृष्ण अंतर्ध्यान हो गये! उसके बाद सबसे पहले कृष्ण सत्संग शुरू हुआ तो कृष्ण को खोजने में गोपीजन कोई कृष्ण बनता है, कोई गोपी बनती है, कोई गीत गाती है, कोई इसी भाव में डूबकर सत्संग करने लगी थी। ग्यारह साल और बावन दिन भगवान कृष्ण व्रज छोड़कर, वृंदावन छोड़कर मथुरा गये हैं। उसके बाद व्रज किसके आधार पर जीया? कथा के आधार पर। लेकिन कथा व्यासपीठ पर नहीं थी। उसके बाद ये जो गोपबालक थे व्रज के, जो कृष्ण के साथ दिनभर घूमते थे वो गोप कोई भी पेड़ के नीचे बैठकर, दो-तीन गोप बालक आ जाते थे उसके कृष्ण के साथ हुई घटनाओं का जिक्र करते थे। ये था सत्संग। कोई मंच नहीं, कोई प्लेटफोर्म नहीं। कोई गणवेश नहीं, कोई सब्जेक्ट नहीं। सहज।

तीसरा सत्संग व्रज में हुआ जब मथुरा से भगवान योगेश्वर कृष्ण ने उद्धव को भेजा। उद्धव व्रज आया। ज्ञान की गांसडी लेकर आया है। व्रजांगनाओं को आत्मत्व सर्वत्र है, परमात्मा व्यापक है। ये गंवार गोपियां जिसके पीछे झार-झार रोती है! ये क्या पागलपन है? ऐसी गोपीओं को समझाने के लिए उद्धो आया है। और फिर जब उद्धव व्रजवासीओं के प्रेम को देखकर अपना सब उतर गया नशा उसके बाद उद्धव व्रज में रहे हैं। और गोपीजनों से प्रार्थना करते हैं कि मुझे माफ़ करना। मैंने जो कुछ अपराध प्रेमीयों का कर दिया हो तो उसका प्रायश्चित्त व्रजवधूओं मुझे बताओ। तब गोपियां कहती है, उद्धो! यदि आप अपराध समझते हैं, ये आप की बात है लेकिन इससे मुक्त होना है तो हमें कृष्णकथा सुनाओ। गोविंद का कोई प्रसंग मथुरा का सुनाओ। और साहब! इस उद्धव की कथा सुनने के लिए लाठी का टेका लेकर नंद-जशोदा भी आते थे। और पीछे बैठ जाते थे! झार-झार रोते थे! एक ओर कृष्ण का ये विरह उसकी कथा सुनाता है उद्धव। ज्ञान का घमंड पूर्णतः उतरा उद्धव का। और वो मूल विवेक जागृत हुआ उद्धव में सत्संग से। कभी वज्रांगनाएं कथा कहती है।

कथा क्या करती है? कथ्थक करती है। लीला करती है कृष्ण की तरह। और कथा में कोई स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। सत्संग में एक छोटी-सी कविता हो कि महाकाव्य हो क्या फ़र्क पड़ता है? सत्संग सत्संग है। सर्वत्र सत्संग पड़ा है। चाहिए 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' चौथी कथा होती थी व्रज में, दिन-ब-दिन बाबा नंद का शरीर कृष होने लगा था! दो लोग हाथ दे तब खड़े हो पाते थे! तब समझती थी यशोदा कि बाबा को स्वस्थ रखने के लिए एक ही उपाय है, कृष्णकथा। कोई नियम नहीं था। ये झेन था! नंदबाबा खटियां पर बैठते थे। कथा कहनेवाली यशोदा नीचे बैठती थी। श्रोता व्यासपीठ पर बैठा है। कथा कहनेवाली माँ यशोदा नीचे बैठी है!

चौथा सत्संग जब नंदबाबा बहुत व्याकुल होते थे तब यशोदा गोविंदगीत गाती थी, कृष्णकथा सुनाती थी। सत्संग होता था व्रज में घर-घर में। वहां कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। एक प्रकार की भाव की अवस्था थी जो विवेक को प्रगट करती थी। लेकिन मुझे कहने दो, पांचवीं कथा हुई व्रज में ये पंचसत्संग पंच विवेक का जन्मदाता है। कभी विस्तार से कहने का जी करता है। लेकिन 'भागवत' में जिसका संकेत है। एक दिन द्वारिका में दाउदादा बलरामजी भगवान कृष्ण को कहते है, गोविंद, तुम्हें याद है कि जब हमने वृंदावन छोड़ा और सब रो रहे थे तब तूने कहा था, जल्दी आयेंगे। ढ़ाढ़स दिया था! इतना समय! द्वारिका की ये स्वर्णमयी शोभा। ब्याह भी हो गया, बच्चे भी हो गये। गोविंद, तुम्हें नहीं लगता कि एक बार हमें वृंदावन जाना चाहिए? मैं जानता हूं योगेश्वर तेरी व्यस्तता को लेकिन कम से कम दो दिन हो आये? प्रस्ताव दाउ का है। कृष्ण चुप रहते हैं। अब दाउ कृष्ण से इज़ाज़त मांगता है। मैं जाउं वृंदावन? कृष्ण को अच्छा लगा। दादा, आप जाये। लेकिन जाये आप तो कितना रहेंगे वहां? क्योंकि आप ज्यादा वहां रहो तो यहां मुझे अच्छा भी नहीं लगेगा।

कृष्णकथा तो प्रेमकथा है, भावकथा है। समर्पण और त्याग की स्पर्धा है। दाउदादा, बलभद्रजी रथारूढ होते हैं। पश्चिम से रथ चला उत्तर की ओर। द्वारिका से दाउ निकले हैं लेकिन विभीषण जैसे लंका से राम के पास आया ऐसे मनोरथ करते-करते आज दाउदादा व्रज जा रहे हैं। कितना समय बीता है साहब! लेकिन 'चिरंतन यौवन', जो झेन परंपरा का शब्द है, चिरंतन भाव का यौवन! प्रेम कभी बूढ़ा नहीं होता। बूढ़ा हो जाये वो प्रेम नहीं। आज दाउ का नाम सुनकर सब दौड़े हैं दाउदादा के दर्शन के लिए। अपनी भूमि की गली-गली, वीधि-वीधि याद है दाउ को। आये हैं। सब दौड़े हैं। दाउ आये हैं उसकी तो खुशी है ही लेकिन शायद गोविंद सरप्राईज़ दे दे! दाउ के मुख से खबर दी जाय कि गोविंद भी आ रहा है! दादा को सब घिर लेते हैं। जैसे सुमंत का रथ आया था राम को गंगा के तट छोड़कर और अवधवासीओं की जिज्ञासा बढ़ी थी कि शायद राम आये हो, जानकी आई हो, लखन आये हो। पूरा व्रज इकठ्ठा हुआ है। साहब! दो महिने का ये आखिरी व्रजवास उसमें आषाढ महिना मिलने-जुलने में बीता। घर-घर दाउ जाते हैं। एक महिना बीता। सावन आया। फिर एक महिने तक दाउ ने

सावन मास में व्रज में कृष्णकथा कही। सब व्रजवासी बैठ जाते थे। तीन प्रसंग सुनाये। एक मथुरा प्रसंग कि हम यहां से गये फिर मथुरा में क्या-क्या हुआ? पहले वो त्रिभंगी के घर गये, कुब्जा के घर वहां से। दाउ की कथा शुरू हुई तो सबसे पहली कथा कुब्जा के वहां से कथा शुरू हुई। कथा तो झौंपड़े से शुरू होनी चाहिए। कथा तो जो आखिरी व्यक्ति है उनके पास से शुरू होनी चाहिए। तुलसी शास्त्र पूरा करते हैं तो गंधर्व को याद नहीं किया, गणिका को याद किया!

तो पहली कथा कुछ दिन चली मथुराकथा। दूसरे भाग की दस दिन की कथा उसने कही रणछोड की कि किस तरह मथुरा पर आपत्तियां आने लगी और फिर गोविंद ने मथुरा छोड़ा। खबर नहीं क्या लीला है कि कृष्ण दूर ही जाता रहा, दूर ही जाता रहा! फिर द्वारिका की कथा दाउदादा ने व्रजवासीओं को सुनाई। उसके बाद कृष्ण का अवतारकार्य का जो केन्द्र था, 'मध्ये महाभारत'; कृष्ण अद्‌भुत है! कृष्ण पूर्ण है। कृष्ण, कृष्ण है। फिर 'महाभारत' की वो सब कथा सुनाई। आखिर में जो द्वारिका में थोड़ी गड़बड़ शुरू हुई! इससे थोड़े दाउदादा उबे थे, इसीलिए कहे, गोविंद, हम थोड़े समय के लिए व्रज जाये। लेकिन कृष्ण व्यस्तता के कारण अथवा तो 'अति विचित्र भगवंत गति।' न गये और दाउ आये। क्योंकि एक प्रसंग देखने के बाद दाउ ने ये निर्णय लिया व्रज जाने का। और वो प्रसंग 'भागवत' का है 'नृग आख्यान।' कृष्ण के पुत्रों के पुत्र हैं छोटे-छोटे और द्वारिकाधीश को जब समय मिलता ये बच्चों का दादा, कभी कुअे के तट पर, कभी समंदर के तट पर बच्चों को ले जाते थे। कहानियां सुनाते थे। बच्चों को कहते थे गेंद से खेलो। तुम्हारे लिए यही सत्संग है। छोटे-छोटे क्रिकेट खेले वो सत्संग है।

मैं जूनागढ में संतवाणी कार्यक्रम में बैठा था। एक पंथ के कोई महापुरुष पधारे। और उनके छोटे-छोटे दीक्षित बालकृष्ण, इतने सुंदर बालक थे! सात-आठ वर्ष की उम्र। तो मैं बैठा था। वो महापुरुष भी बैठे थे। सब बैठे थे और संतवाणी चल रही थी। तो उनके साथ जो दीक्षित बालकृष्ण थे वो मैं जहां बैठा था, मेरे पीछे आकर बैठ गये। और मैं बार-बार उसको देखकर मुस्कुराता था। वो किसी भी बहाने मुझे छूने की कोशिश कर रहे थे। अब संतवाणी चल रही है। बड़े बुझर्ग महात्मा, धर्मधूरंधर बैठे थे और उसमें मैं जंतु! लेकिन मेरा ध्यान न संतवाणी में रहा, न ये धर्मधूरंधरों में रहा! इन 'बालंमुकुंदं मनसा स्मरामि।' मैं ऐसा अविवेक नहीं कर सकता लेकिन मुझसे नहीं रहा गया। मैंने बच्चों को धीरे से कहा, क्रिकेट खेलते हो? बच्चों ने मुह बिगाड़कर ना कही! मैंने कहा, क्यों? जो हुआ सो कह रहा हूं। वो बैठे थे उसका निर्देश किया, ये मुझे खेलने दे! ये दीक्षा नहीं है, दंड है! कोई जुगति नहीं है, ये जुलम है! ये बहुत बड़ी हिंसा है।

समाज की कुछ मान्यताएं जिसको ठीक न कहा जाये ऐसी अनेक मान्यतायें रही हमारे देश में! जो दीकरी को दूध पीती करते थे! और कुछ ऐसी धर्म के नाम पर बातें आई कि दीकराओं को धर्म पीता कर दिया! छोटे-बड़े धर्म का उसको वो बनाकर के उसका बचपन छिन लिया! तो भगवान कृष्ण कहते हैं अपने पुत्र के बच्चों को कि गेंद से खेलो। तो उसके बाद जब वो गेंद कुए में गिर गई। सब बच्चे जाते हैं तो इसमें बड़ा गिरगिट कुए में था। दौड़कर, दादा, दादा, कृष्ण को पुकारते हैं कि इसमें बड़ा गिरगिट है। और भगवान कृष्ण इस गिरगिट का उद्धार करते हैं। तब उसने अपना इतिहास कहा कि इक्ष्वाकु वंश सूर्यवंश के राजा की परंपरा में मैं नृग हूं। संत और ब्राह्मणों का अपराध हो गया इसीलिए मैं गिरगिट हुआ हूं। ऐसा सब होने लगा। कुछ कथायें आई। फिर ये सब बड़े होने लगे। थोड़े उद्दंड होने लगे! बड़े घर के बच्चे जब प्रारब्ध, संगदोष कोई भी हो, अल्लाह जाने! उसके कारण जब रास्ते चुकने लगते हैं तब जो पूरा जीवन पवित्रता से जीया हो उसकी पीड़ा तो ईश्वर भी नहीं जानता। वो अकेला ही जानता होता है। ईश्वर बहुत व्यस्त है। हर पीड़ा कहां जानता है? हर पीड़ा तो बुद्धपुरुष जानता है। वो निवृत्त से निवृत्त भी है और व्यस्त से व्यस्त भी है। उसके बाद ये जो थोड़ी द्वारिका की स्थिति है उसका वर्णन दाउदादा कथा में व्रजवासीओं को सुनाते हैं। दो मास पूरे हुए और दादा बलभद्र बिदा लेते हैं व्रज से। पूरे व्रजवासी प्रार्थना करते हैं, दाउदादा, साल में एक बार तो आया करो। गोविंद न आये तो कुछ नहीं, आप पधारो। दाउ जानता है कि अब कोई नहीं आयेगा। और दाउ ये भी जानता है कि अब जो होगा वो व्रजवासी कैसे सह सकेंगे!

कृष्णचरित्र तो प्रसंगों से भरपूर है। यही यदु परंपरा में युवक उच्छृंखल बन गये। साधु-संतों की मजाक करने लगे! एक बात कहूं मेरे भाई-बहन, किसी साधु में हमारी श्रद्धा न हो तो कोई चिंता नहीं, ये साधु है कि नहीं उसकी खोज भी मत करना। लेकिन हो सके तो किसी साधु का अपराध न करना। मेरे 'मानस' में लिखा है-

साधु अवग्या तुरत भवानी।

कर कल्यान अखिल कै हानी।।

कृष्ण के कुल में आये संतान उद्दंड बन गये! साधुओं की मजाक करने लगे कि ये हमारी सखी सगर्भा है! और शापित हुए कि तो उसमें से जो निकलेगा वो ही तुम्हारे कुल का नाशक होगा! सोमनाथ आदि-अनादि है लेकिन तलगाजरडा भी कहता है कि कृष्ण ने महादेव की पूजा की आख़िर में। सोमनाथ की पूजा की आख़िर में। और दाउ साथ में है। अभिषेक हुआ। इतिहास में मत जाना। इतिहास के पास तथ्य होता है, अध्यात्म के पास सत्य होता है। सबको अपना-अपना महादेव होता है। सबको अपना-अपना कृष्ण होता है। सबको अपनी-अपनी राधा होती है। सबको अपना-अपना नरसिंह मेहता होता है। अपनी-अपनी मीरां होती है। मेरे कहने का मतलब सबको अपनी-अपनी दृष्टि होनी चाहिए। आज 'महाभारत' पर कितना अन्वेषण हो रहा है! और सब अपने-अपने अनुभव, अपने-अपने अभ्यास से 'महाभारत' को अपने-अपने भाव से पेश कर रहे हैं। और ये होना जरूरी है। होना चाहिए। कृष्ण के हाथ में बिल्वपत्र पूजारी ने दिया। आज गोविंद ने पहली बार दाउदादा की आंख पर बिल्वपत्र छुआया। कृष्ण जानता है कि दाउ को जाना है। धीरे-धीरे मुझे भी जाना है। आंख में आंसू भर आये गोविंद की। पीड़ा है कि ये ही दाउ विषम परिस्थिति में निर्णय लेने में वो मुझे कहता था कि गोविंद, कर ले। कोई चिंता नहीं। और ये आदमी वो है कि जब मेरी बात से सहमत नहीं होता तब विरोध नहीं करता। याद रखना, हम उनके वंशज है। सोम और चंद्र दो ही वंश। दो ही वंश 'सूर्य सोम।' एक सूर्यवंश और एक चंद्रवंश। पहले रामजनम की कथा सुनाते हैं और फिर 'दशमस्कंध' में वो चंद्रवंशी भगवान कृष्ण की कथा सुनाते हैं। मैं सुबह से परेशान हूं कृष्ण की स्मृति में! आज उस गोविंद के प्रागट्य का दिन है। आंख में आंसू भर आये हैं गोविंद की। पीड़ा है कि ये ही दाउ विषम परिस्थिति में निर्णय लेने में वो मुझे कहता था, गोविंद कर ले। कोई चिंता नहीं। और ये आदमी वो है कि जब मेरी बात से सहमत नहीं होता तब विरोध नहीं करता, विरत हो जाता था। 'महाभारत' के युद्ध के साथ वो सहमत नहीं था। भारत की यात्रा पर दाउदादा निकल गया है। बदायूंनीसाहब का एक शे'र है-

तेरे जैसा कोई मिला ही नहीं।

कैसे मिलता, था ही नहीं।

राम, राम है। कृष्ण, कृष्ण है।

तो सत्संग से विवेक प्रगट होता है। सहजता संग से नहीं आती, जन्म से आती है। और सत्संग को कोई फ्रेम में हम न मढ़ें कि व्यासपीठ हो, पोथी हो, आरती ऊतरती हो, उत्सव मनाएं। ये भी एक विधा है, लेकिन एक छोटी-सी कला भी सत्संग हो सकती है। कोई अच्छी किताब पढ़ो, सत्संग है। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम्हारे मन ठीक है, कोई अच्छी फ़िल्म देखो वो भी सत्संग है। लेकिन मन ठीक हो। मन यदि ठीक नहीं तो हम शुभ को भी अशुभ कर देते हैं।

तने पीता नथी आवडतो मूर्ख मन मारा,

पदार्थ एवो क्यो छे के जे शराब नथी?

-घायलसाहब

तो एक समझ आ जाये तो हर चीज़ मधुर है। और समझ नहीं आई तो मधुर को भी हम कटू कर देते हैं, बिगाड़ देते हैं। तो सत्संग कहां नहीं है? और मैं कोई अपने बल से नहीं

सत्संग का मेरा मतलब, ऐसा अर्थ मत करना कि कोई व्यासपीठ पर बोले और हम सुने उसको ही सत्संग कहे। सत्संग एक कविता भी हो सकती है। सत्संग एक नवलकथा भी हो सकती है। सत्संग एक छोटा-सा लेख भी हो सकता है। सत्संग एक चित्र भी हो सकता है। सत्संग एक शिल्प भी हो सकता है। सत्संग कोई राग भी हो सकता है। सत्संग एक नृत्य भी हो सकता है। सत्संग मौन भी हो सकता है। सत्संग अश्रु भी हो सकता है। सत्संग आश्रय भी हो सकता है। उसको संकीर्ण मत करो। सत्संग का कोई यूनिफोर्म नहीं होता, सत्संग युनिवर्सल होता है।

बोल रहा हूं। मेरा बल है 'रामचरित मानस।' जानकीजी गौरीपूजा के लिए जब गई पुष्पवाटिका में और पहली बार रामदर्शन करती है, तुलसीदासजी ने पूरा शृंगाररस ऊड़ेला है वहां। ये बनी घटना नहीं है लेकिन सब की अपनी-अपनी अदा है। जब राम और जानकी को पुष्पवाटिका में मिलवाना था और शृंगाररस की चर्चा करनी थी कि तो तुलसीदासजी ने सूरदासजी को प्रार्थना की कि मैं मर्यादा में बैठा हूं और राम और जानकी की मधुर शृंगारभरी बातें सूरदासजी, इतना प्रकरण आप लिख दो। तो कहते हैं, ये सीताराम के मिलन की बात सूरदास ने लिखी है। तो जानकीजी जब राम को देखती है, राम जानकी को देखते हैं और भगवान राम कहते हैं-

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा।
सहज पुनीत मोर मनु छोभा।।
सुंदरता कहुं सुंदर करई।
छबिगृहं दीपसिखा जनु बरई।।

जानकी के सौंदर्य की चर्चा का एक भाव है। सीताजी की सुंदरता की कथा राम कहते हैं, श्रोता है लक्ष्मणजी। सीताजी के पैर के नूपुर की आवाज़ को सुनकर राम लक्ष्मण को कहते हैं, लक्ष्मण, मुझे लगता है कामदेव ने दुंदुभिनाद किया है! और मेरे मनरूपी विश्व पर ये कब्जा करने आ रहा है! हम रघुवंशी है। हमारा सहज स्वभाव है कि हमारा मन कभी कुपंथ पर नहीं जाता है। ये रूप अलौकिक है और मन पवित्र है। आकर्षण स्वाभाविक है। ये तो मैथिलि है। जब जानकी डूबने लगी तब एक शयानी सखी ने कहा पुष्पवाटिका की कथा में। डूबते को संभालना चाहिए मित्र को, सखाओं को, सखी को। तो एक सखी जानकी को कहती है, मुझे लगता है अब थोड़ी देर हो रही है, माँ डाटेंगी। अब सीताजी जा रही है वापस। अब अष्टसखीओं के सामने बार बार राम को देखे तो जरा अविवेक हो जाये इसीलिए सीयाजू क्या करती है 'मानस' में कि छोटे-छोटे झरने बह रहे हैं बाग में तो झरन के बहाने, कोई लता है तो उसको हटाने के बहाने राम को देख लेती है। इधर से कोई मृगसावक निकलता है तो मृगसावक को देखने बहाने बनाकर जानकी देख लेती है। इश्वर का दर्शन केवल मंदिर में ही नहीं होता है। झरने के पीछे भी हो सकता है। फूल से लदी डालिओं से भी हो सकता है। प्रकृति के माध्यम से परमात्मा को देखना हम भूल गये हैं। और झेन में एक बहुत बड़ी बात ये है कि कुछ मंदिर में मूर्ति है ही नहीं, केवल प्रकृति है। जिस देव की पीछवाई प्रकृति हो। हमने पीछवाईयां बदल दी! रजोगुणी पीछवाईयां डाल दी! तुलसी कहते हैं, तुम बेकार को हटाओ, सार्थक निकलेगा।

मंदिर ताहं विश्व रूपाळुं, सुंदर सरजनहारा रे।
पळपळ तारां दर्शन थाये, देखे देखणहारा रे।

तो मेरे कहने का मतलब है, सत्संग को संकीर्णता न दी जाये। सत्संग तो मौन भी हो सकता है। बाप! सत्संग आशमां है। किसी शुभ के साथ जुड़ना सत्संग है। सत के साथ रिश्ता बनाना सत्संग है। और ऐसे सत्संग से जिसका जनम होता है उसका नाम विवेक है।

तो बच्चा सहज है, विवेक नहीं है। लेकिन धीरे-धीरे वो सीखता है। विवेक आता है अच्छे संग से, माँ से, पिता से, दादाओं से छोटी-छोटी कहानिओं को सुनकर के। मैं नाम नहीं दूं, एक युनिवर्सिटी में मैं बोलने गया तो वाइस चान्सेलरसाहब ने कहा कि मोरारिबापू कहानी कहते हैं। हां, मैं राम की बातें कहता हूं, यस। उसमें कोई बुरी बात तो नहीं है। लेकिन ऐसे प्रेम से कहा! प्रेम कई प्रकार के होते हैं! मोरारिबापू कहानी कहते हैं! और कहानी और कथा में बड़ा अंतर है। मैंने मन में कहा, ये अच्छा कहा आपने। मुझे आख़िर में बोलना था। मेरे विषय पर मैं बोला लेकिन बीच में ये जवाब दिया आप जिस टोन में कहते हैं उसमें कहानी सूला देती है, कथा जगा देती है।

बाप! सत्संग को छोटा न समझो। बहुत बृहद है, आसमां है। इससे प्रगट होता है विवेक। सहजता जन्मजात होती है, आनुवंशिक होती है। जिन्स में उतरती है सहजता। और इसी सहज को झेन स्वभाव कहते हैं। जहां नियम हो वहां झेन नहीं, जहां झेन है वहां कोई नियम नहीं। इसीलिए ऐसे विनोदी झेन साधु होते हैं, कभी शीर्षासन करके मरते हैं! ये आदमी मौत तक मजाक करते हैं और आनंद से मृत्यु पाते हैं। इतना सहज जो स्वभाव की बात है वो झेन है। और ऐसी सहजता की बात तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में एक सौ छ: बार लिखी है। हम तो अभी शुरूआत कर रहे हैं। लेकिन मुझे क्षमा करना, आज मेरी स्मृति में कृष्ण बहुत है। इसीलिए आज की कथा को यहां में पूरी कर दूं।

जहां नियम है वहां झेन नहीं, जहां झेन है वहां नियम नहीं

'मानस-सहज', जिसको केन्द्र में रखते हुए हम सहज स्वभाव की परिकम्मा कर रहे हैं। बहुत-सी बातें आ रही है। एक यंग फ्लावर युवक ने पूछा है, 'बापू, झेन स्वभाव में विघ्न आते हैं?' कल भी एक चिठ्ठी नरेशभाई ने मुझे दी थी कि झेन स्वभाव में ये-

काम क्रोध मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्हके कपट दंभ नहीं माया।
तिन्हके हृदय बसहू रघुराया।।

आप जान गये हैं जो नित्य पारायण करते हैं, जो कथा सुनते हैं ये कि 'अयोध्याकांड' में भगवान राम वाल्मीकि के आश्रम में जाते हैं, फिर निवास के लिए जगह पूछते हैं कि भगवन्, हमें बताइए कि हम किस जगह रहे? क्योंकि चौदह साल की हमारी अवधि है वन की तो कोई ऐसा स्थान बताइए कि जहां हमसे कोई मुनियों को उद्वेग न हो; कोई जीव-जंतु, प्राणी हमसे परेशान न हो ऐसा कोई स्थान हमें बताइए।

आप 'मानस' कथा के प्रवाह में जानते हैं, राम अपनी यात्रा में तीन मुनियों को तीन बात पूछते हैं। सबसे पहले भरद्वाजजी को ये रास्ता पूछते है कि हमें बताइए कि अब यहां प्रयाग से हम किस रास्ते से आगे बढ़ें? वेद जिसको 'नेति-नेति' कहते हैं वो परमात्मा एक मुनि को रास्ता पूछते हैं! इसमें मुझे नहीं जाना है। ये सब स्वतंत्र प्रसंग है। लेकिन हमें कोई रास्ता पूछे तो हम स्वार्थ का रास्ता बता सकते हैं। यदि किसी साधु को पूछा जाय तो यही परमार्थ का रास्ता बता सकता है। और जैसे कोई 'संगीत विशारद' होता है वैसे कई लोग 'स्वार्थ विशारद' होते हैं! और मेरे 'मानस' में तुलसी ने भरद्वाज को 'परमार्थ विशारद' कहा है।

भरद्वाज मुनि बसहि प्रयागा। जिनही राम पद अति अनुरागा।।
तापस दम सम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना।।

फिर वाल्मीकि के आश्रम में भगवान रहने की जगह पूछते हैं कि हम कहां रहे? और फिर 'अरण्यकांड' की यात्रा में भगवान आगे बढ़ते हैं तो कुंभज ऋषि को भगवान मंत्र पूछते हैं कि मुझे जो दुरितों का निर्वाण करना है और दिव्यता का निर्माण करना है ये मेरा जो अभियान है उसमें मैं आपके साथ मंत्रणा करना चाहता हूं। आप मुझे कोई विचार प्रदान करे। और युवान भाई-बहनों, मैं फिर एक बार कहूं कि जहां से मिले शुभ विचार ग्रहण करना। हमें सब पता है ऐसा कभी मानना मत। जिज्ञासा भरी रखिए। शायर की ग़ज़ल का एक आख़िरी बंध है कि-

राशिद किसे सुनाउं गली में तेरी ग़ज़ल,
उनके मकां का कोई दरीचा खुला न था।

हम बंधियार है। परमात्मा ने कान दिये हैं बिना किवाड़। जीभ पर तो दो-दो पहरे लगा दिये दांत के और होठों के। बहुत सावधान जीभ रहे इसलिए। लेकिन कान में कोई किवाड़ नहीं है। इसका मतलब है कि सबको सुनो, शुभ सुनो।

भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा:।
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा:।

हमारा जो वेदमंत्र कहता है उसमें सबसे पहले हैं, भद्र सुनो। 'श्रीमद् भागवत' की नवधा भक्ति में पहली भक्ति का वर्णन है वो श्रवण ही है। और उपनिषद के वेदांत में भी श्रवण, मनन और निदिध्यासन जो त्रयी प्रस्थान है, मान लो उसमें श्रवण से ही यात्रा है। वाल्मीकिजी भी जब स्थान निर्देश करते हैं तब कहते हैं, 'जिन्हके श्रवण समुद्र समाना।' जिसके कान सागर की तरह है। आपके शुभ चरित्रों के विचारों की नदियां उनमें आती ही रहे, आती ही रहे लेकिन जिसके कानरूपी समुद्र तृप्त न हो ऐसे श्रावक के हृदय में आप निवास करो, ऐसा वाल्मीकि कहते हैं।

तो विचार लेने चाहिए शुभ। बाईबल से मिले तो बाईबल से; कुर्यान से मिले तो कुर्यान से; धम्मपद, जहां से मिले। हम विचार ग्रहण करना भूल गये हैं। हम मान बैठे हैं कि हमारे पास सब है। तो अगस्त्य मुनि से भगवान विचार प्राप्त करते हैं कि दुरित का निर्वाण हो और दिव्यता का निर्माण हो ये जो मेरा अवतारकार्य है भगवन्, उसके लिए मुझे विचारदान करो। तो वाल्मीकिजी से पूछा गया कि मुझे स्थान बताओ। ये नरेशभाई ने जो चौपाई पूछी है वो वहीं की है। उसमें वाल्मीकिजी चौदह स्थान दिखाते हैं। ये आध्यात्मिक स्थान है। उसमें एक बात है कि हे राघव-

काम कोह मद मान न मोहा।

जहां काम न हो, क्रोध न हो, मद न हो, मोह न हो, लोभ न हो, क्षोभ न हो, राग न हो, द्रोह न हो, जिसमें कपट न हो, दंभ न हो, माया न हो उसके हृदय में आप निवास करो। ये तो बड़ी लंबी शर्त है यार! अब ये न हो तो ही राम हमारे हृदय में रहे तो तो हम तो कभी पास होनेवाले नहीं है! और कलियुग में ये नहीं चल सकती शर्त। मुबारक त्रेतायुग में।

मेरे भाई-बहन, झेन प्रवाह में तीन बस्तु ही बाधक है। और जो मैं हर वक्त कह रहा हूं। काम न हो ये बहुत प्रेक्टिकल नहीं लग रहा है। शरीर होगा तो काम होगा। क्योंकि हम जन्मे हैं माता-पिता के शरीर के कारण। तो काम थोड़ा होगा। क्रोध होगा। हम आदमी है। प्रतिष्ठा थोड़ी मिलती है तो अहंकार भी आ जाता है। और कुछ हो और मद आये तो चिंता करना नहीं चाहिए। लेकिन आये तो भी क्षम्य है। यद्यपि प्रशंसनीय नहीं है मद लेकिन क्षम्य जरूर है। एक बहुत बड़ी सलाह है। पत्नी जब बोले तब शांत रहना। और पत्नी शांत हो तब कुछ भी मत बोलना। है न मंत्र? ले लो। तो हम जैसे जंतुओं को तो मद भी आ जाता है। काम होता है, क्रोध होता है। हम संसार में इधर-उधर करने में माया भी आ जाती है। कपटी बन जाते हैं, छिपाते हैं। एक-दूसरे के प्रति राग-द्वेष हो जाता है। और दंभ चौबीस घंटों हम करते हैं। इतनी बड़ी लंबी शर्त कलियुग के जीवों पर नहीं होनी चाहिए। राम तो ओलरेडी हृदय में है।

ईश्वर: सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

लेकिन ये सब दुरित न हो तो अंदर बैठा हुआ राम, हम उसको महसूस कर सकते हैं।

मुझे तो इतना ही लगता है कि झेन सहज जो धारा है, उसमें तीन विघ्न है। वैसे पांच विघ्न है। मुझे बहुत आनंद इसीलिए है कि मैंने तो सहज ये सब्जेक्ट उठा लिया है, लेकिन 'रामचरित मानस' के प्रसंग में क्रमश: विघ्न है जिसकी चर्चा मैं कई कथाओं में कर चुका हूं। वो झेन परंपरा में पांच विघ्न यद्यपि 'मानस' के क्रम में नहीं है, क्रम भेद है, लेकिन वो ही के वो ही पांच विघ्न है, जो 'मानस' में है। मैं उसमें बाद में जाउं लेकिन जो बात कही है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, माया ये सब डरानेवाले शब्द है। सावधान रहना चाहिए, यस लेकिन ये कोई बड़ी बातें नहीं है। शास्त्रों ने लिखा है तो लिखा है, अच्छी बात है। इसका इन्कार नहीं है। ये सब निकल जाये तो तो बहुत अच्छा है।

तो मेरी प्रार्थना ये है, मैं इस पर बहुत सिरियस हूं, प्रसन्नतापूर्वक सिरियस हूं कि तीन वस्तु से हम और आप बचें, प्लीज़। एक तो निंदा से बचें। दूसरा ईर्ष्या से बचें हम और आप। और तीसरा परस्पर द्वेष से बचे, बस। 'तिन्हके हृदय बसहू रघुराया।' मेरा तो इतना ही कहना है। त्रिसूत्रीय बातें हैं। आप शांति से सोचिये, हम दूसरों की निंदा क्यों करते हैं? क्यों? मैंने परसों भी कथा में कहा कि बुद्धपुरुष निंदा नहीं करता, निदान करता है। जैसे कि एक डोक्टर कहता है कि तूने खाने में भूल की है। वैद को चाहिए दोष निकाले। लेकिन ये निंदा नहीं है, ये आगे की तंदुरस्ती के लिए सही निदान है। हम क्यों एक-दूसरे की निंदा करें? दूसरी बात है ईर्ष्या। तीसरी बात है द्वेष। जितनी मात्रा में ये कम होता है, सुख ज्यादा महसूस होता है। प्रसन्नता हमारे घर की नौकरानी हो जाती है, जो ये तीन चीज़ों से बाहर निकलता है क्रमश:। आप कहेंगे कि ये तीनों जाये कैसे? तो फिर मैं ये मेरे तीनों सूत्र आपके सामने रखना चाहूंगा कि जितनी मात्रा में हमारे में सत्य आएगा इतनी मात्रा में निंदा छूट जाएगी। क्योंकि निंदा में वाणी का उपयोग है। और जिसकी वाणी में सत्य की प्रतिष्ठा हो जाएगी, योगसूत्र पतंजलि का, 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वं।' जिसके पास सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है उसको बिना क्रिया किये परिणाम सामने आने लगते हैं।

प्रयोग करना मेरे भाई-बहन, हम ये नहीं कहते हैं कि हम सत्वादी हो गये हैं। लेकिन जीभ की वेदिका पर जितनी सत्य की पादुका प्रतिष्ठित ज्यादा होगी वहां निंदा की मात्रा कम होने लगेगी। और मुझे लगता है कि पुरानी पीढ़ी से ये जो नई पीढ़ी आई है उसमें सत्य के प्रति आकर्षण ज्यादा है। सत्य का सेवन निंदा को मिटाता है। और तुम्हारी कोई निंदा करे तो मुस्कुराना और सोचना कि ये बेचारा निंदा नहीं कर रहा है, ये अपने खानदान का एड्रेस दे रहा है कि हमारा ये घराना है! सत्य प्रतिष्ठा से निंदा मिट जाती है। आप देखिये साहब, गांधीजी दो-टूक बातें आमने-सामने करते थे, लेकिन वैरी की भी निंदा नहीं करते थे। उसने मेहता (नरसिंह) से सीखा था-

सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे;
वाछ, काछ मन निश्चल राखे, धनधन जननी तेनी रे ...

नागर महेता के इस पद को वैश्विक दर्जा जिस महापुरुष के कारण मिला।

वैष्णवजन तो तेने कहीए जे पीड़ पराई जाणे रे।

इनमें मेरी गिनती मैं, मैं जिस तरह उसका दर्शन करता हूं, अठारह सूत्र है। और हम वैष्णवों की ये अठारह सूत्रीय 'गीता' है।

बाप! जिसको सत्य की मिठाई का अनुभव हुआ है उसको निंदा रसहीन लगती है। इसमें रुचि नहीं रहती है साहब! फिर तो खुद को बहुत पस्तावा होता है कि मैंने इतनी साल दूसरों की निंदा करने में बिताई! हाय! ये क्या किया हमने? और केवल मुझमें ये बुराई है, मुझमें ये बुराई है, मैं खल हूं, मैं शठ हूं, ऐसे पुकार करने से भी काम नहीं बनेगा। जो है तो है। पूर्ण मालिक तू है। हम तो जीव है। तू अंशी है, हम अंश है। हममें बुराइयां हो सकती है। कब तक रोते रहेंगे? और ये रहम करनेवाला जो परमात्मा है, जो करुणामयी परमतत्त्व है ये केवल हमारी कमियों को गिनने के लिए वहां नहीं बैठा है!

तो तीन बातें है। काम-क्रोध की इतनी चिंता नहीं करनी चाहिए। यद्यपि ठीक नहीं है ये। अतिरेक बुरा है। सम्यक् मात्रा में शास्त्रों ने उसकी निंदा नहीं की है। सवाल है निंदा का। 'रामचरित मानस' में लिखा है-

परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा।
पर निंदा सम अघ न गरिसा।।

कागभुशुंडि ने कहा, गरुड, अहिंसा के समान कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है और दूसरे की निंदा करने के समान विश्व में कोई पाप नहीं है। यहां शब्द है 'परनिंदा।' विनोबा कहते हैं, खुद की निंदा भी बहुत न करो। गुणकथन करो। आदमी को अपने अच्छे स्वभाव का गौरव होना चाहिए।

बाप! मेरा निवेदन ये है, हम साथ में सोचे कि जितनी मात्रा में सत्य की प्रतिष्ठा होती है, इतनी मात्रा में निंदा का रस फिक्का पड़ने लगता है। मेरे श्रावक भाई-बहन, निंदा छूटती है सत्य की मात्रा बढ़ाने से। दूसरा, ईर्ष्या। निंदा और ईर्ष्या में मुझे ऐसा लगा है कि निंदा जीभ से होती है और ईर्ष्या जीव से होती है। जीभ बोलेगी नहीं लेकिन ईर्ष्या करनेवाला अंदर से जलता है। उसने एक साल में तरक्की कर ली! कल तो कुछ नहीं था! आज कहां का कहां पहुंच गया! इतनी इज्ज़त कमा ली! इतना धन कमा लिया!

इतना पद प्राप्त कर लिया! ये जो ईर्ष्या है, मुझे लगता है इस बीमारी का एक ही औषध है और वो है प्रेम। प्रेम ईर्ष्या की मात्रा को कम करता है।

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी-सी।
महोब्बत करनेवालों की निगाहें कुछ और होती है।
- राज कौशिक

ईर्ष्या मिटती है मेरे अनुभव में प्रेम करने से। मेरा निवेदन याद रखना। आप जिससे प्रेम करोगे उसकी ईर्ष्या नहीं करोगे। नेवर। क्योंकि आप महोब्बत कर रहे हो। और प्रेम करने के बाद, जिस पर प्यार करते हैं उसकी यदि आप ईर्ष्या करे तो समझना ये तुम वहेम में हो, प्रेम में हो ही नहीं। तुम प्रेमी नहीं हो। प्रेमी कभी शिकायत नहीं करता साहब! हां, भाव की दुनिया में कुछ भावों का वर्णन हमारे आचार्यों ने जरूर किया है। मनाना, रिझाना, जो गोपियों में दिखता है। लेकिन तत्त्वत: गोपियां-व्रजांगनाएं वल्लभ परंपरा में तो कहा गया है गोपी प्रेम की धजा है।

तो बाप! प्रेम; हमसे जो छोटे हो उससे स्नेह करो। यद्यपि प्रेम में कोई बंधारण नहीं है, कोई संविधान नहीं है, न तो कोई सिद्धांत है। ये सबसे मुक्त एक स्थिति का नाम है। फिर भी हम से जो छोटे हैं उससे स्नेह करो, क्योंकि 'मानस' में लिखा है, 'बड़े सनेह लघुन्ह पर करहि।' बड़ा वो है जो छोटे पर प्रेम करे। जैसे कि पर्वत इसीलिए बड़ा है कि घास के तिनके को सिर पर रखता है, समंदर इसीलिए बड़ा है क्योंकि पानी के जो फेन है वो अपने लहरों के उपर रखता है। हम से जो छोटे हैं उस पर स्नेह हो। समान के साथ प्रेम और हम से बड़े हो, हमसे ज्येष्ठ-श्रेष्ठ-वरिष्ठ हो उसके प्रति एक महाआदर हो, एक पूज्यता हो। और जो प्रेम करता है, प्रेमरस जिसने चखा उसकी ईर्ष्या कम हो जाती है। क्योंकि उसकी जबान ने कोई ज्यादा अमृत पी लिया है ताकि अब कटु पी नहीं सकता। तीसरा सूत्र है करुणा। और मुझे लगता है, जिसमें करुणा आ जाती है उसका द्वेष मिटने लगता है।

तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद ये बहुत बड़ी शर्तें लगा रखी है हमारे लिए। हम संसारी है। हम में ये सब होगा। मेरी मांग उतनी ही है कि हम निंदा छोड़े बस। काम सम्यक् मात्रा में जरूरी है। ये तो 'काम' शब्द आता है न तो एक ही बस्तु हम में फोकस हो गई है कि काम मानी ये, बाकी तुम एक अच्छा संगीत सुनो और तुममें रस आये वो भी काम है ये मत भूलो। एक तुम अच्छा चित्र पेईन्ट करो तो वो भी बिना काम हो ही नहीं सकता। असंभव है। लेकिन हमारी एक मानसिकता क्या बन गई है कि काम मानी बस एक प्रकार की देहकेन्द्रित वस्तु हो गई! बस। नहीं, नहीं, नहीं, ये बहुत गलत अर्थघटन है। ये काम को अन्याय हो रहा है। काम को ठीक से हमने रखा नहीं है। काम कहां नहीं है साहब! कोई अच्छा नज़ारा देखो, अच्छा पर्वत-हरियाली देखो और आंखें रस ले तो ये कामतत्त्व है, रसतत्त्व है। नितांत अनावश्यक है तो ये निंदा है। नितांत अनावश्यक है तो ये ईर्ष्या है। नितांत अनावश्यक है तो द्वेष है।

तो मुझे जो आज पूछा गया है ये है कि बापू, झेन सहजधारा में विघ्न आते हैं? विघ्न तो आता है। एक नदी बहती है तो सहज बहती है। विघ्न क्या आता है उसमें कि कभी धारा कम हो, कभी ज्यादा हो। कभी कोई बंध बांध दे बीच में तो प्रवाह रुक जाता है। कभी प्रवाह को कलुषित कोई कर दे ये विघ्न है। तो मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि 'रामचरित मानस' में जो एक प्रेमप्रवाह है, एक सहज यात्रा है 'मानस' की उसमें पांच विघ्न बताये हैं और वो ही झेन स्वभाव में भी है। क्रम बदला है। और क्रम की क्या जरूरत है? पहले 'मानस' को आधार बना दूं आपके सामने कि 'मानस' की कथा में आता है कि राम चित्रकूट गये उसके बाद भरतजी राम को मनाने के लिए, आत्मनिवेदन करने के लिए जाते हैं चित्रकूट। भरत ने स्पष्ट कह दिया वशिष्ठ को भी कि मैं सत्ता का आदमी नहीं हूं, मैं सत् का आदमी हूं। मैं पद का आदमी नहीं हूं, में पादुका का आदमी हूं। यदि आप मेरा हित चाहते हो तो आप मुझे एक बार लिए चलो चित्रकूट। और फिर भरत पूरी अयोध्या को लेकर चित्रकूट में जाते हैं। वहां गुरुकृपा से जो पाया है मैंने उसमें पांच बाधाएं है भरत की अयोध्या से चित्रकूट की यात्रा में। ये प्रत्येक साधक की बाधाएं है। चाहे सूफ़ी हो, चाहे झेन हो, चाहे बाउल हो, चाहे अकाल हो, चाहे इस्लाम हो। क्रमभेदे अथवा तो रूपभेदे, व्याख्याभेदे शायद रुचिभेदे लेकिन ये पांच मूल बाधाएं है हमारी आध्यात्मिक यात्रा की।

कथा का मुद्दा में आपको पहले बता दूं, फिर हम ये झेन को उसके साथ तोले। 'मानस' में कथा है कि भरतजी जब निकले, माताओं को पालखी में बिठाई, गुरुदेव को रथ में बिठाएं बाकी सबको जो-जो जिसकी योग्यता है ऐसे वाहन में बिठाए और भरतजी ने एक निर्णय कर लिया कि मैं वाहन में नहीं बैठूंगा। तो भरत ने मानो एक सहज निर्णय कर लिया था। और सोचा होगा कि इतने लोगों में किसको पता? तो भरतजी पैदल चल रहे हैं। लेकिन लोगों को पता लगने लगा कि राजकुमार नीचे चल रहे हैं। तो कुछ लोग देखा-देखी से नीचे चलने लगे कि हमारा राजकुमार नीचे चल रहे हैं तो हम वाहन में कैसे बैठे? कुछ लोग आदर के लिए, शिष्टाचार के लिए अथवा तो भरतजी महान है, उसकी नकल करने लगे कि हम भी नीचे चले। और पूरी अयोध्या नीचे चलने लगी पैदल। ये बात माँ कौशल्या के पास पहुंची। माँ पालखी में बैठी है। माँ ने देखा, माँ को लगा कि रामविरह और अवधपति के विरह में अयोध्या के लोगों की शारीरिक स्थिति अच्छी नहीं है कि ये पदयात्रा करके चित्रकूट पहुंचे। कहीं बीमार हो सकते हैं। और राजरानी होने के कारण हमारा दायित्व है कि हमारी प्रजा पीड़ित न हो। कहारो को कहा कि मेरी पालखी भरत के पास ले चलो जहां भरत पैदल जा रहे हैं। पालखी लाई गई। माँ ने पालखी का परदा ऊंचा किया। भरत के सिर पर हाथ रखा, भाई, बेटे! तू नीचे चलता है तो पूरी अवध नीचे चलती है! तुम पैदल न चलो, रथ में बैठ जाओ।

मैं कथाओं में गाता रहा, अध्यात्मयात्रा में, चित्रकूट की यात्रा में, चैतसिक यात्रा में, प्रेम की यात्रा में, परम की यात्रा में पहला विघ्न है नियम छोड़ना पड़ता है। मेरा कल का निवेदन याद रखियेगा। जहां नियम है वहां झेन नहीं, जहां झेन है वहां नियम नहीं। भरत को नियम तोड़ना पड़ा। मेरे भाई-बहन, हमारी जीवनयात्रा में पहली बाधा है, नियम को छोड़ना पड़े। ठीक अमीर (खुशरो) कहता है, 'छाप तिलक सब छीनी।' मेरे गुरु ने ये नियम-व्रत सब छिन लिया मुझसे एक कृपादृष्टि करके। ये अच्छा लगता है मुझे सूफ़ीयों का ये सिद्धांत क्योंकि वहां नियम हटा दिये जाते हैं। कौन नियम? कौन विधि? कौन निषेध? मारो गोली! मेरे जीवन में ऐसा बहुत बनता है। मैं झोंपड़े में जाता रहता हूं और चाय तो पीना अपना धरम है। तो मेरा तो व्रत है गंगाजल पीउं। गाय का ही दूध का सेवन करूं। लेकिन वहां बेचारे के यहां भेंस का दूध हो तो मैं कहता हूं, कोई बात नहीं। मेरी गंगाजल में चाय बनानी होगी, थोड़ा गंगाजल डालो। जो गंगाजल भेंस के दूध को पलट न दे वो मेरे पाप क्या धोयेगी? गंगाजल की ये ताकत है। इसमें क्या चिंता करे हम? स्थितिस्थापक रहो। जिद्द नहीं करो। तुम्हारा मौन हो और बच्चा तुम्हारी दाढ़ी में हाथ डालकर कहे, दादा, दादा, ये क्या है? उस समय बच्चे को खुश करने के लिए थोड़ा बोल दो। हा, जिद्द नहीं करो। किसी बुद्धपुरुष के घर हम जाये, किसी साधुपुरुष के घर पर जाये और वो कुछ आपको दे और आप कहे कि हमारा व्रत है, हम नहीं लेते हैं, उपवास है! नहीं, नहीं, किसी बुद्धपुरुष के यहां मिला हुआ प्रसाद तुम्हारे उपवास का फल है।

नियम सहजधारा में तोड़ना पड़ता है। लेकिन भरत ने बहुत सुंदर दर्शन प्रदान किया कि मेरा नियम भंग क्यों हुआ? सोचा कि मेरे व्रत की सब को खबर हो गई। भरत पैदल जा रहे हैं ये सबको खबर मिल गई और सब नीचे ऊतरे और आख़िर कहा, मेरा व्रत छोड़ना पड़ा! अपने व्रत को जाहिर मत होने दो, बस। छोटी-सी बात। नियम को छिपाओ, शास्त्र में लिखा है, व्रत गुप्त रहे। लेकिन स्वाभाविक है, हम जीव है तो हम कोई व्रत रखते हैं तो हमारी इच्छा होती है कि पांच लोगों को पता लगना चाहिए! व्रत का सुख नहीं है, व्रत की उद्घोषणा का ज्यादा सुख है। ये कोई आलोचना के रूप में नहीं है। हम जीव के स्वभाव है। नियम की उद्घोषणा ये सहजधारा की बाधा

जहां नियम है वहां झेन नहीं, जहां झेन है वहां नियम नहीं। भरत को नियम तोड़ना पड़ा। मेरे भाई-बहन, हमारी जीवनयात्रा में पहली बाधा है, नियम को छोड़ना पड़े। मेरे जीवन में ऐसा बहुत बनता है। मैं झोंपड़े में जाता रहता हूं और चाय तो पीना अपना धरम है! तो मेरा तो व्रत है गंगाजल पीउं; गाय का ही दूध का सेवन करूं। लेकिन वहां बेचारे के यहां भेंस का दूध हो तो मैं कहता हूं, कोई बात नहीं। मेरी गंगाजल में चाय बनानी होगी, थोड़ा गंगाजल डालो। जो गंगाजल भेंस के दूध को पलट न दे वो मेरे पाप क्या धोयेगी? गंगाजल की ये ताकत है। इसमें क्या चिंता करें हम? स्थितिस्थापक रहो। जिद्द नहीं करो।

है। भरतजी रथ में बैठ गये। जिद्द नहीं की। गंगातट पक पहुंच गये। फिर गंगा से नौका विहार करके सामने तट तक गये। सामने तट से फिर चित्रकूट यात्रा आगे बढ़ी तब भरत ने सोचा कि सबको पता लग गया कि मैं पैदल चलता हूं इसीलिए विघ्न आया।

तो सहजधारा का पहला विघ्न है व्रत तोड़ना। दूसरा विघ्न है, जब भरतजी शृंगबेरपुर भीलों की नगरी में पहुंचते हैं तब भील लोगों ने गुहराज ने भरत का विरोध किया। गैरसमझ पैदा की कि निश्चित रूप में भरत कैकेयी का पुत्र है, विष की वेल को अमृत का फल नहीं लग सकता। राम को अकेले समझकर भरत पूरी अवध की चतुरंगिणी सेना को लेकर निकला है। राम को मारकर के निष्कंटक राज चाहता है। हम राम के उपासक हैं। जब तक हम जीएंगे, भरत के एक आदमी को पार नहीं होने देंगे! बाद में तो पता लगता है कि भरत युद्ध के लिए नहीं जाते हैं। फिर सब बदल गए। मेरे कहने का मतलब, प्यार की यात्रा का दूसरा विघ्न है रास्ते में आया समाज हमारे लिए गैरसमझ पैदा करे। ये दूसरी बाधा है। सभी संतों के बारे में, सभी बुद्धपुरुष के बारे में तथाकथित समाज ने उसकी यात्रा में बाधा की है गैरसमझ फैला करके! ये निश्चित बात है। झेन साधु बोकुजु, बोकुजु की यात्रा में ये पांचों विघ्न आये हैं। उसमें पहला विघ्न गैरसमझ है। नियम छोड़ना, क्रमभेद में दूसरा विघ्न है। बोकुजु जो था उसके बारे में गलतफ़हमियां, अफ़वा उड़ानेवाला उसका अगल-बगल का समाज निकला कि कहां का ये फ़कीर है! कहां का ये साधु है! ये तो दंभी है! पाखंडी है! तर्क लगाने लगे, यदि साधु होता तो ऐसा नहीं करता, ऐसा नहीं करता! खबर नहीं, क्या-क्या अफ़वाएं फैलाई गई! ये विघ्न है। लेकिन जब कोई गेरसमझ करता है उसी समय बुद्धपुरुष को अपनी यात्रा में अपने को बहुत संभालना चाहिए, क्योंकि फैलाई गई अफ़वायें, फैलाई गई गैरसमझें, गलत किया हुआ दर्शन सब मिट जायेंगे, जब पता लग जाएगा कि भरत कोई ओर तत्त्व है। यही गुह का समाज भरत के लिए जो सुविधा जुटाने लगा है! लेकिन पहले तो ये गैरसमझरूपी विघ्न आया, जो बोकुजु के जीवन में आया।

यात्रा में आगे बढ़ते हैं भरतजी तो भरद्वाजऋषि के आश्रम में गये। वहां भरद्वाजजी ने भरत की परीक्षा करने के लिए अपने तपप्रभाव से रिद्धि-सिद्धि खड़ी कर दी और ऐसे भोग के प्रसाधन वहां उपलब्ध कराए कि कोई भी इसमें लिप्त हो जाये। भरद्वाज ने सोचा कि देखूं कि भरत कितना त्यागी है? ये राज छोड़कर आया है ये सही है कि लोलूप है? इरादा क्या है? प्रयाग में बड़ा ऐश्वर्य खड़ा कर दिया। वनितादिक भोग भी वहां उपलब्ध करा दिये गये कि देखे ये रामयात्रा में निकला हुआ काम में रुकता है कि नहीं? और वहां ऐसा हुआ कि अयोध्या के लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कहीं न कहीं लिप्त हो जाते हैं। लेकिन तुलसी सुंदर रूपक लाते हैं। चकवा-चकवी, पक्षी को एक पिंजड़े में बंद कर दो और अच्छा कोई खिलाड़ी उसको रात्रि के समय मिलाने की कोशिश करे तो सफल नहीं होते हैं क्योंकि चकवा और चकवी रात्रि के वियोगी पक्षी माने गये हैं। तो संपत्ति चकवी है भरद्वाज के आश्रम में, भरत चकवा है। आश्रम पिंजड़ा है। मुनि दोनों को मिलाना चाहते हैं, खिलवाड़ करना चाहते हैं। लेकिन प्रात:काल हो गया तब तक संपत्तिरूपी चकवी भरतरूपी चकवे पर प्रभाव न डाल सकी और भरतरूपी चकवा संपतिरूपी चकवी पर लुब्ध नहीं हुआ।

एक युवक ने आज मुझे पूछा है, बापू, कल 'महाभारत' और 'रामायण' की चर्चा बापा ने की, आप भी कहते हैं, अब सब माहिती टेलिफोन में है तो आप भी 'महाभारत', 'रामायण' पढ़ो। लेकिन बापू, हमारी रुचि ये सब पढ़ने- लिखने में ज्यादा नहीं है, हम तो 'राम राम' जपते हैं। उत्तम; उत्तम; प्यारे, उत्तम। क्योंकि राम बोलो ना, 'रा' एटले 'रामायण।' अने 'म' एटले 'महाभारत!' राम बोलो एटले तमारी जीभ उपर 'रामायण' ने 'महाभारत।'

तीसरी बाधा जो है सहज प्रवाह की, कोई ऋषिमुनियों के द्वारा हमारी परीक्षा। और झेन मास्टर की कथाओं में खास करके मैं बाकुजु को बीच में रखने की कोशिश कर रहा हूं, क्योंकि उसके जीवन में पांचों है। उसकी परीक्षा उसके गुरु ने ही की। उसके मास्टर ने ही की। उसके वैराग की परीक्षा उसका गुरु लेता है कि देखूं कि मेरा चेला कहां पहुंचा है? और जिन-जिन बातों का सहज अस्वीकार हुआ था। लेकिन आखिर बाकुजु इसमें से पार हो जाता है। तो वहां झेन सहजधारा में भी एक विघ्न ये बताया जो 'मानस' के सहज समांतर क्रम में नहीं, लेकिन तत्त्वत: एक जैसा है।

भरतजी ऋषिमुनियों की परीक्षा से भी पास हो गये। ये प्रेमयात्रा आगे बढ़ी। और आप जानते हैं, भरत के प्रेम को, भरत के त्याग को, भरत के वैराग को देखकर देवराज इन्द्र और देवगण चिंतित हो गये कि ये भरत निश्चितरूप में राम को वापस ले आयेंगे। और हमारी पूरी योजना खत्म हो जाएगी! अब कुछ भी करो, बृहस्पति देवगुरु जो है उसके पास जाकर देवराज ने कहा, भरत और राम की भेंट न हो ऐसा कोई विघ्न डालो। ये चौथा विघ्न है कि दैवीतत्त्व विघ्न डाले। पृथ्वी का तत्त्व तो डाले ही डाले, आसमांवाले भी विघ्न डाले! देवताओं ने योजना बनाने की कोशिश की। यद्यपि सफल न हुई फिर भी माया तो थोड़ी आगे जाके करते ही है। मेरे भाई-बहन, सावधान! दैवीलोग, सुरीलोग भी बाधा डालते हैं। क्योंकि देवता अच्छे लोग है, लेकिन स्वार्थी है। 'सुर स्वारथी' ऐसा 'मानस' में प्रमाणपत्र दिया गया है। और ये स्वार्थी लोगों ने सोचा कि हम इतने ऊंचे हैं, पृथ्वी पर चलनेवाला आदमी इतना आगे निकल जाएगा? साहब! बोकुजु के गुरुभाई लोग जो साधना में इससे थोड़े उपर ऊठ चुके थे, झेन मास्टर के ही लोग थे उसने वहां उसकी प्रगति को तोड़ने की कोशिश की गई है, जो 'मानस' की यात्रा के मुताबिक विघ्न है।

पांचवां और अंतिम विघ्न भरतयात्रा का है जब भरत बिलकुल चित्रकूट निकट पहुंचते हैं। सुबह का समय। ऋषिमुनियों की मंडली बैठी है। प्रभु नित्यकर्म से निवृत्त बैठे हैं। लक्ष्मणजी बैठे हैं। भगवान ने उत्तर दिशा में देखा तो बहुत धूल उड़ रही है। पशु-पक्षी भागकर सभी राम के आश्रम में आने लगे हैं! भगवान राम खड़े हो गये! चित्त चकित हो गया! इतने में कोल-किरात भील लोग दौड़ते आये, महाराज, एक खबर है, अयोध्या से राजकुमार भरत पूरी अयोध्या को लेकर आ रहे हैं। भरत आ रहा है, ये सुमंगल बेन सुनते ही प्रभु की स्थिति, शरीर पुलकायित, मन में हर्ष छा गया! शरदऋतु के कमल जैसी आंखों में स्नेह के जल आ गये, आंखें डबडबा गई! भरत आ रहा है! चिंतित हो गये राम कि भरत क्यों आता है? भगवान के हृदय को थोड़ा क्षुभित देखकर नित्य जागृत लक्ष्मणजी खड़े हो जाते हैं कि महाराज, आपका चित्त जरा वो हुआ है। भरत चतुरंगिणी सेना और अयोध्या को लेकर आ रहा है। मुझे माफ़ करिएगा प्रभु, बिना पूछे बोल रहा हूं। लेकिन भरत ने और भरत की माता ने हम पर कम नहीं गुजारी है! और वहां तक कहा है कि भरत की मैं हत्या कर दूंगा! मैं भरत को मार दूंगा! कोई भरत की हत्या कर दे ये सुनते ही ठाकुर का हृदय द्रवित हो गया। फिर तो प्रभु बहुत सुंदर ढंग से बोलकर के वो निवारण करते हैं। लेकिन लक्ष्मण कहते हैं कि मैं भरत की हत्या कर दूं! क्या मतलब? पांचवा विघ्न है, जब निकट की व्यक्ति, पारिवारिक व्यक्ति साधक की हत्या करने के लिए तुल जाये। मैं तो इतना ही कहकर आगे बढ़ूं कि आध्यात्मिक यात्रा में, भजन की यात्रा में ये सब होगा, याद रखना। ये सब बाधाएं आती है, चाहे सूफ़ी हो, चाहे झेन हो, चाहे हिन्दु हो, चाहे मुस्लिम हो। कहीं भी। लेकिन कोई पारिवारिक व्यक्ति तुम्हारा इतना भयंकर विरोध करे तब समझना अब राम दूर नहीं है। उसी पल को जो संभल लेता है तो भरत-राम मिलन हो जाता है; ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाता है; परम की उपलब्धि हो जाती है।

बोकुजु, उसके जीवन की कथा है, उसकी पत्नी ने उसकी हत्या करने का निर्णय कर दिया था कि रात को ये फ़कीर सोया हो तब सीने पर बैठकर एक छूरे से उसकी गरदन काट दूंगी। ये सब बातें मैंने झेन कथाओं में पढ़ी। मुझे लगा कि 'मानस' में भी यही तो बाधायें है। तो झेन प्रवाह में विघ्न आते हैं कि नहीं? ये पांच बाधायें अक्सर आती है। लेकिन भजन पक्का होगा तो 'सुन्दरकांड' की पंक्तियां याद रखना-

गरल सुधा रिपु करहि मिताई।
गोपद सिंधु अनल सीत लाई।।

वैदिक धर्म को अपने ढंग से देखनेवाले एक परमयात्री आर्यसमाज के उद्गाता दयानंद सरस्वती, कहते हैं, उसके रसोई पकानेवाले ने ज़हर दे दिया था, मार डाला था। जुडास कौन था? बहुत निकटवाला आदमी था जिसने अपने बुद्धपुरुष की पहचान करवा दी कि यही तो है। जहां-जहां देखो। मारनेवाले अपने ही निकलते हैं, पराये होते ही नहीं।

आग तो अपने ही लगा देते हैं।
गैर तो सिर्फ़ हवा देते हैं।

तो झेन धारा में भी ये पांच बाधाये हैं जो 'मानस' में आई है। इसीलिए ये 'मानस-सहज' स्वाभाविक चल रहा है कि इसके कारण हम मिलकर के संवाद रच रहे हैं।

मानस-सहज : ८

सहजता ये जीवन की बहुत बड़ी संपदा है

'मानस-सहज', जिसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा इस कथा में प्रधान रूप में हो रही है ऐसे पावन सुअवसर पर कल सायंकाल जो एक सात्त्विक कार्यक्रम हुआ। खुश रहो। आज मेरे पास चिठ्ठी ज़ाकिरभाई की सहजता को सराहती हुई आई है। और ये है भी। महान जो होता है वो सहज होता है ये अर्धसत्य है। क्योंकि दुनिया में कई महान लोगों को हम देखते हैं लेकिन सहज नहीं होते हैं। महान होते हैं वो सहज होते हैं ये अर्धसत्य है। पूर्ण सत्य तो यही है कि जो सहज होते हैं वही महान होते हैं। उसने कल के प्रोग्राम में विशेष रूप में सहजता से बजाया है। मैं इस युवक को पैंतीस साल से जान रहा हूं। कल स्वयं ज़ाकिर ने कहा कि बापू, पहली बार मैं पैंतीस साल पहले सुलतानखां साहब के साथ बजाने आया था। आदमी सहज जा रहा था! बहुत-बहुत बधाई। हम सबकी शुभकामनाएं दोनों आर्टिस्ट के लिए। खुश रहो; अल्लाह सलामत रखे। महान लोग सहज होते हैं, ऐसा तो अर्धसत्य है। लेकिन जो सहज होते हैं वो महान होते हैं। तो हम प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे कि कल सायंकालीन बैठक में बहुत सुंदर कार्यक्रम चला। और आपने मार्क किया होगा कि कौन किसके लिए तालियां बजा रहा था वो निश्चित्त नहीं था! लेकिन ज़ाकिर स्वयं इस तालियों की बधाई नीलाद्रि की ओर पेश कर रहा था। विद्या यदि विद्या है तो आदमी को विनयी कर ही देगी।

'मानस-सहज'; छांदोग्य उपनिषद का एक मंत्र है। इसमें से मैं एक भाग आपके सामने रखना चाहता हूं। मैं भूल न जाऊं अथवा तो कोई दोष न रह जाये इसलिए ये मंत्र मैंने लिख लिया है सुबह। आपके सामने पेश करता हूं। बुद्ध की भूमि पर आइये, वेदमंत्र से बुद्ध का सन्मान करें, बुद्ध को प्रणाम करें।

अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमय: प्राणस्तेजोमयी
वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयस्विति तथा सोम्येति होवा च।।

ये 'सहज' शब्द के अनुकूल सूत्र है इसलिए मैंने वेदमंत्र का आश्रय लिया है। 'अन्नमयं', अन्न मानी अनाज। अन्न सहज है।

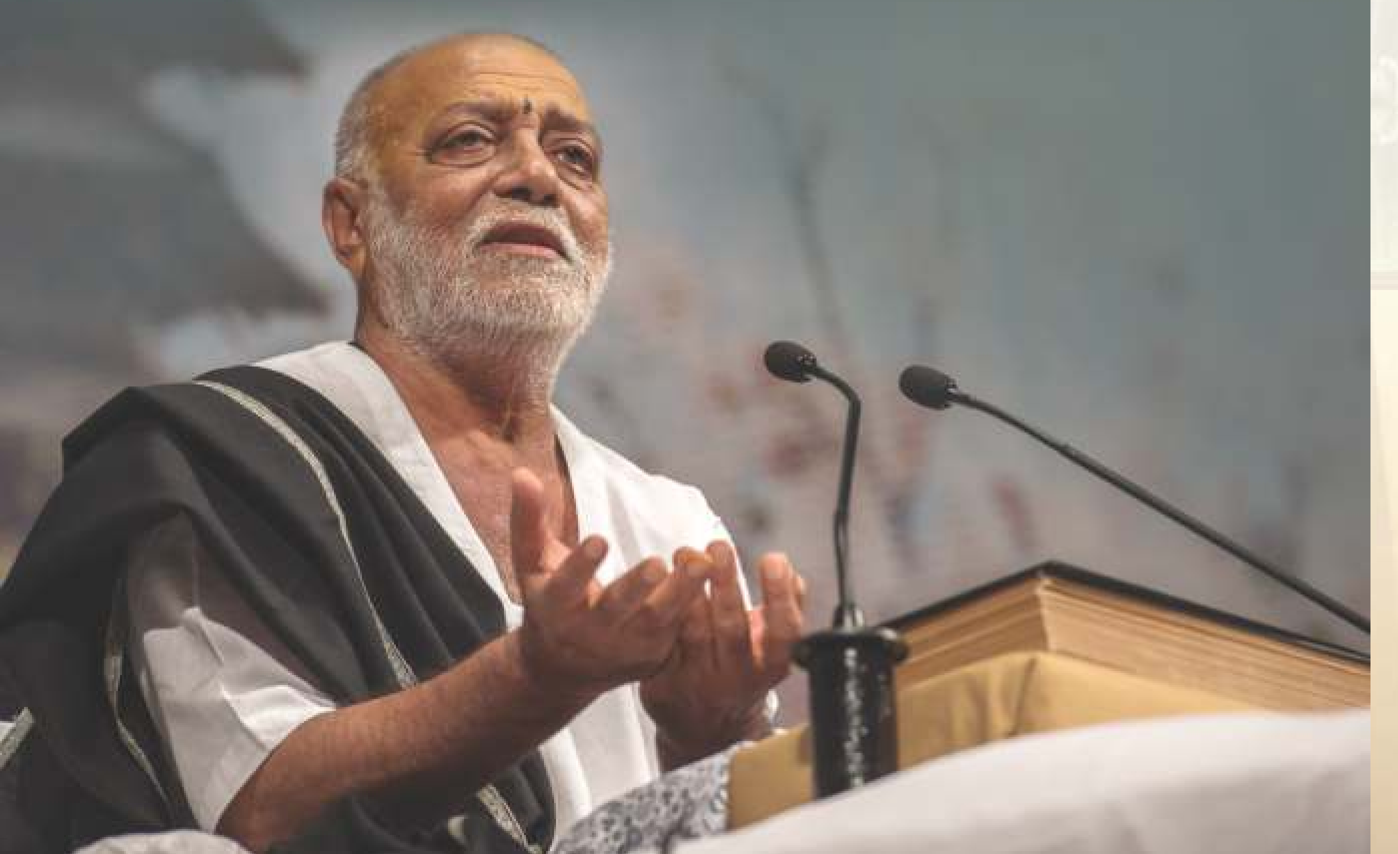

ध्यान देना, अन्न की सहजता इतनी है कि आप मिट्टी में उसको डाल दो और थोड़ी मिट्टी उस पर रख दो, उसको वायु मिले, प्रकाश मिले, पानी मिले, सुरक्षा मिले तो वो सहज ऊगता है। अन्न सहज है। ऋषि कहता है, 'अन्नमयं हि सोम्य मन'; अन्न की तरह क्योंकि अन्न से मन पैदा होता है। अन्न मन का निर्माता भी है और मन का ज्ञाता भी है। जब मेरे देश का ऋषि कहता है, 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।' तब अन्न का दर्जा एक बुद्धपुरुष तक पहुंचता है। ये बुद्धपुरुष के बारे में कहा जाता है कि किसके आश्रय में हम होते हैं, जो हमारा बुद्धपुरुष हो, एकनाथ, नानक, कोई मास्टर, कोई बुद्ध, कबीर जो जिसके हो। तो गुरु जो होता है वो हमारे मन का निर्माता भी है और मन का ज्ञाता भी है। दोनों गुरुपद जानता है।

तो अन्न ब्रह्म है। गुरु साक्षात् ब्रह्म है। तो अन्न से मन पैदा होता है, ये बहुत वैज्ञानिक है साहब! हमारे देश का ऋषि कहता है कि जब हम अन्न खाते हैं उसमें से एक भाग में से हमारी हड्डियां, हमारी चमडी, हमारी नसें ये बनता है। अन्न का थोड़ा स्थूलभाग से अंदर का मांस, मज्जा आदि सब बनता है। लेकिन अन्न का बहुत सूक्ष्म भाग जो शेष रहता है इसमें से आदमी का मन बनता है। तो अन्न सहज है। आदमी का मन भी सहज होना चाहिए। क्योंकि घराना उसका सहज है। अब आप कहेंगे कि मन तो सहज है नहीं! मन सहज है क्या हमारा? 'गीता' तो कहती है कि 'चंचल हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।' लेकिन उसकी चंचलता भी सहज है। मन का चांचल्य असहज नहीं है, ये भी सहज है। मन का ये जो अन्न से पैदा हुआ सहज लक्षण यदि हम आत्मसात् कर पाये, बातें करते-करते, कुछ अभ्यास करते, कुछ स्वाध्याय करके, कुछ बुद्धपुरुष के पास चुपचाप बैठकर उसको हम आत्मसात् करना चाहे तो मन को समझा जाता है। हमारी तकलीफ़ ये है मेरे भाई-बहन कि हमने मन से तकरारें बहुत की! और जब तकरार होती है तब आदमी सहज नहीं होता, असहज होता है। ये हिरोशिमा में जब बंब डाला गया, आदमी सहज नहीं होगा। मुझे पूरी माहिती नहीं है लेकिन जिस प्लेन में आकर वो आदमी बंब फ़ेंक गया था, कहते हैं, आदमी फिर पागल हुआ है, विक्षिप्त हुआ है!

मेरे पास आज एक जिज्ञासा ये भी आई है कि 'बापू, हिरोशिमा को देखकर के लगता है दुनिया में आण्विक हिंसक कोई भी शस्त्र नहीं होना चाहिए। आपकी राय क्या है?' व्यक्तिगत रूप में कोई भी शस्त्र के पक्ष में मैं नहीं हूं। इसीलिए मेरा व्यक्तिगत निर्णय ये केवल मेरी व्याख्या न बन जाये, मेरी मान्यता ही न बनी रहे और मैंने तलगाजरडा के राममंदिर से राम के हाथों से धनुषबाण ले लिये हैं कि मेरे तलगाजरडा में बैठना है तो हाथ में फूल रखो। प्रासंगिक नहीं है धनुषबाण। और आप सब जानते हैं कि दो या तीन साल हुई है, हनुमानजयंती के दिन मैंने हनुमानजी के हाथ से गदा की जगह सितार रख दिया है।

मैं व्यक्तिगत रूप में कोई भी शस्त्र के पक्ष में नहीं हूं। मुझे व्यक्तिगत रूप में कोई कहे तो भारत को आण्विक शस्त्र नहीं रखने चाहिए। व्यक्तिगत रूप में। लेकिन मैं समझता हूं ये प्रेक्टिकल नहीं है। पूरे देश की सुरक्षा की जब बात आती है और अगल-बगल में, पडोश में एक क्षण में कितनी बार पृथ्वी को खतम कर दिया जाय ऐसे जब आण्विक शस्त्र है तब भारत की सुरक्षा के लिए भारत के अपने प्रयत्न करने चाहिए। ये राष्ट्रीय प्रश्न है। लेकिन व्यक्तिगत रूप में मुझे पूछो तो किसी भी देश के पास आण्विक शस्त्र नहीं होने चाहिए। और मुझे समझने की कोशिश करियेगा। यदि मानो कोई आण्विक शस्त्र रखे और जिस देश के पास आण्विक शस्त्र नहीं है उस पर फेंको, उसको नष्ट-नाबूद कर दो, ये करने के बाद भी फेंकनेवाले को क्या मिलेगा? देश के दो भाग हो जाये तो शांति हो जाये शायद! हुई? लाखों मरे पार्टिशन के समय यहां के वहां के! इस विभीषिका को याद करने जैसी नहीं है। और मेरे कई अज़ीज़ उर्दू शायर है जो मेरे से उम्र में बड़े हैं, ज्ञान में बड़े हैं, लेकिन आज भी मैंने उसके साथ बैठकों में पाया कि ये क्या हुआ? हमारा घर उधर, हम यहां! कहीं चैन नहीं है और उसमें से कोई दर्दपूर्ण शायरियां जन्म लेती है। ये हमारा धनंजय एक बार रो पड़ा था! कश्मीरी पंडित है धनंजय। जो अच्छा शास्त्रीय गायक है और वो एक बार गा रहा था और उसकी आंख में आंसू आ गया! मैं समझ गया कि उसको अपना वतन याद आ गया है। सबके दिल में एक पीड़ है। परिणाम क्या? क्यों इतनी खूबसूरत सृष्टि को मिटाने की खोज हो रही है? और अपनी जात को हम कितनी असहाय समझ रहे हैं!

मैं समझता हूं कि मेरी कोई बात थोड़ी ही जानेवाली है लेकिन मैंने जब यूनो की बिल्डिंग न्यूयोर्क की

परिकम्मा की; मैंने इजाज़त मांगी थी शासन से कि मुझे कुछ करना नहीं है, मुझे माला लेकर यूनो की बिल्डिंग की परिकम्मा करनी है। मैं साधु हूं। मैं एक बार परिकम्मा करूं। बोले, चाहते क्या हो? चाहता कुछ नहीं हूं। परिकम्मा करनी है हरिनाम लेते-लेते। अल्लाह करे, यहां से शांति का पयगाम जाये। तो मुझे इजाज़त मिली। मैंने परिकम्मा की। मैंने वोशिंग्टन के व्हाईट हाउस की परिकम्मा की ये आप सब जानते हैं। और रशिया जब गया मैं मोस्को में तब भी हम घूमे थे। मैंने कहा था उस समय कि मेरा बस चले तो यूनो की बिल्डिंग पर लिखवा दूं, 'प्रेम देवो भव।' अपनी कौन सुने!

ये मेरे व्यक्तिगत अभिप्राय है प्लीज़! मैं बार-बार कह रहा हूं, ये मेरे अपने विचार है, मैं शस्त्र के पक्ष में नहीं हूं। मुझे तो कोई धक्का दे किसी को तो भी सहा नहीं जाता। कोई माँ-बाप भी बच्चे से जोर से चिल्लाये तो मैं नहीं सह सकता। पृथ्वी तुम्हारे लिए है लेकिन ऐसे काम के लिए नहीं है। शंकराचार्य कहते हैं, 'क्षमामंडले।' पृथ्वी मानी क्षमा। तुम ऐसी क्षमा की भूमि पर खड़े हो, वहां ऐसी क्रूरता क्यों? वहां ये आक्रमकता क्यों? समझ में नहीं आता! मैं व्यक्तिगत रूप से किसी भी संघर्ष से विरुद्ध हूं। शास्त्र का भी संघर्ष नहीं होना चाहिए। ये क्या है शास्त्रार्थ? शास्त्रार्थ करने में ऋषियों ने शताब्दियां निकाल दी! पाया कुछ नहीं! तर्क काटने के सिवा कर भी क्या सकता है? कैंची कोई कपड़ा सी नहीं सकती। कैंची जब भी करेगी जन्मजात स्वभाव से काटने का ही काम करेगी! और सूई, एक छोटी नाचीज़, जिसका कोई मूल्य नहीं लेकिन काटने का काम नहीं करती, सिलाई का काम करती है।

बाप! सहजता हम चुके हैं इसलिए ये सब, क्योंकि शस्त्रवाले सहज नहीं हो सकते हैं। सहजता टूटी जा रही है। ये कथा मेरे लिए और आपके लिए अल्लाह करे वरदान बने सहज जीवन जीने के लिए। सहजता; भगवान शंकर को केन्द्र में रखकर मैंने ये सब्जेक्ट उठाया है। शंकर की समाधि भी सहज है। शंकर का बैठना भी सहज है। शंकर का एकांत भी सहज है। और शंकर की उदासीनता भी सहज है।

तो अन्न सहज है। अन्न से बना हुआ, सूक्ष्म अन्न के भाग से बना हुआ इन्सान का मन सहज होना चाहिए। और मन की चंचलता ये सहज चंचलता है, ऐसा मानकर के उसके साथ तकरार न करे। मन कृष्ण की विभूति है। और महबूब की तो हर चीज़ महबूब होनी चाहिए। बाप! मैं आपसे चर्चा कर रहा हूं, मन चंचल है तो भी अन्न के कारण पैदा हुआ है इसीलिए चंचलता भी उसकी सहज है। किसी व्यक्ति को इसकी सहजता में ही कुबूल करो। उसकी सहजता में जीने दो। चंचल है तो है!

मेरे पास बहुत लोग आते हैं, कहते हैं, 'बापू, हम ध्यान करते हैं तो मन लगता नहीं है! हम जप करते हैं तो मन ये करता है!' छोड़ो; तुम किए जाओ। मेरे भाई-बहन, मैं तो इतना ही कहूं, सहज जो हो, होने दो। आप ध्यान करते हो बुद्ध का और आपके दिमाग में महावीर आ गया तो सोचो कि बुद्ध ने ही महावीर को भेजा है। सहजता न गंवाओ। अपने स्वरूप का जिसको पहले से पता लग गया हो उसको पतंजलिवाले अष्टांगयोग के बीचवाले सभी सात सूत्र का अतिक्रमण हो जाता है। जिसको ऐसे सहज स्वरूप का भान हो जाता है उसको ध्यान, धारणा ये सब निकल जाता है। सीधी समाधि! जो पंक्ति उठाई है इसका कारण यही ही है।

संकर सहज सरूपु सम्हारा।
लागि समाधि अखंड अपारा।।

वहां शंकर के आसन की बात नहीं है; प्राणायाम की बात नहीं है; प्रत्याहार की बात नहीं है; ध्यान की बात नहीं है; धारणा की बात नहीं है। 'सहज बिलग मन लागि समाधि।' सीधी छलांग। ये व्यवस्था है। सहज स्वरूप अनुसंधान जिसका हो गया उसको समाधि के स्टेप चढ़ने नहीं पड़ते; सीधे समाधि में।

तो मध्यकालीन संतों ने मन से गुफ़्तगू की। शरारती बच्चा हो तो राजी होओ ना! ये ज्यादा हो तो जरा चिंता हो, ठीक है। कई लोग मेरे पास आते हैं, बच्चा बहुत तूफ़ानी है! अरे! तूफ़ानी होना चाहिए। करने दो। इसीलिए मध्यकालीन संतों ने मन से गुफ़्तगू की। कुछ मन के साथ अच्छा नहीं लगा तो भी मन के साथ दुश्मन के भाव से नहीं लिया। तुलसी भी कहते हैं, 'राम भज सुनु सठ मना।' मन का जो स्वभाव है उसी स्वभाव के साथ समझौता जीवन की सहजता के लिए उपयोगी है। मन अन्न से पैदा हुआ है। मूलतः अन्न सहज है। 'आपोमयः'; आप मानी पानी। प्राण

जल से बनता है। जल सहज है। जल बहता है सहज। यद्यपि जल की सहजता जड़ सहजता है। 'मानस' में लिखा है-

गगन समीर अनल जल धरनी।
इनकी नाथ सहज जड़ करनी।।

लेकिन जड़ता भी सहज है। और छांदोग्य श्रुति कहती है कि जल से आदमी के प्राण बनते हैं। क्या चिंतन उपनिषदकारों ने किया है! अन्न से बना मन और जल से बना प्राण। ये हमारे जो प्राण है वो जल से बनता है और प्राण जल से बना है इसीलिए जल के अभाव में प्राण टिकते नहीं है। भोजन किये बिना बहुत समय निकल सकता है लेकिन पानी के बिना बहुत समय निकालना मुश्किल है। जलमय प्राण है। तो जल जितना सहज है, आदमी को होना चाहिए प्राण इतना सहज हो। कोई गलत अर्थ न कर ले। प्राणायाम योगसाधना है लेकिन सहज प्राण की गति में प्राणायाम थोड़ा तुम्हें असहज कर देता है। सहजता एक ऐसा जादू है कि आदमी के प्राण को स्वयं संतुलित करता है। मुझे प्राणायाम का पता है कि कैसे किया जाय; कुंभज कैसे किया जाय। क्योंकि संध्या में और ये सब में प्राणायाम करना पड़ता था। प्रत्येक वेद की शाखावालों के बिलग-बिलग प्राणायाम मंत्र बनते थे हमारे। हम सामवेदी होने के कारण सामवेदी संध्या की बात आती है उसमें प्राणायाम करना पड़ता है, निःशंक। लेकिन आज मैं 'मानस' गाता हूं तो मेरे प्राणायाम ये सब कुछ सहज हो जाता है। योगा करो तो योगमास्टर के मार्गदर्शन में करो। योग अद्‌भुत विज्ञान है। लेकिन व्यवस्था ये भी है कि गुरुकृपा से जिसको स्वरूप अनुसंधान हो जाता है उसको तुरंत अतिक्रमण; सब स्टेप करके सीधे वो समाधि में पहुंच जाते हैं और वो समाधि क्षणभंगुर नहीं होती। प्राण की गति सहज हो क्योंकि प्राण जल से हुआ है। और जल सहज है। यद्यपि जल जड़ है। ये पांचों तत्त्व अपनी सहज प्रक्रिया में रहते हैं लेकिन उसकी जड़ता भी एक सहजता है।

तो अन्न से मन बनता है। उसके साथ सहज बातचीत की जाय, दुश्मनी न करे। प्राण जल की सहजता से प्रगट हुए हैं, बिना प्राण हम जी नहीं सकते। लेकिन उसके साथ सहज व्यवहार किया जाय; ये आपमय है। और तेज से वाणी प्रगट होती है; उपनिषद कहते हैं। वाणी का देवता ही अग्नि माना जाता है। सूरज का जो तेज है, सहज है। सूरज का ऊगना सहज है। और तेज के कारण आदमी की वाणी प्रगटी है। ये औपनिषदीय विज्ञान है इसलिए आदमी की वाणी सहज है। लेकिन मन, प्राण और वाणी तीनों को हमने दबा दिया है! मन को दबाया दुश्मनावट करके। प्राणों को विकृत क्यों किया जाय? और वाणी जो तेज की संतान है, 'भूय एव', उपनिषद कहते हैं; ऐसी वाणी को सहज रहने दो। मुझे तो ये सीखना मिला है; आप सुन रहे हैं तो आपको भी। मेरे पास ये चिठ्ठियां आती है इसमें भी सबको ये सहजता प्रिय लगती है। यदि प्रिय है तो थोड़ा प्रयास करे। प्रयास मीन्स, इस अर्थ में कि हम कम से कम मन को असहज न होने दे। मन किसी सुंदरता की ओर जाये तो थोड़ा भाव बदलो। मन की सहज गति है उसको रोको नहीं। मन को अपना खोराक मिल जाएगा।

तो बाप! सहजता अद्‌भुत चीज है। यदि वो सहजसाध्य हो जाये तो कुछ करना नहीं पड़ता यार! ये झेन स्वभाव में भी ये सब रीतिरिवाज आया है ये सब बाद में आया है। मैं सब ठीक आधार सह कहना चाहता हूं। बाकी इन लोगों की मस्ती तो बिलकुल सहज थी। इसीलिए मैंने पहले ही दिन कहा था कि झेन स्वभाव में कोई ग्रंथ नहीं है। ये अच्छा है। बाद में ग्रंथ बन जाते हैं ये तो रिवाज है। तो ऐसी जीवन की सहज रीत।

बाप! सहजता ये जीवन की बहुत बड़ी संपदा है। वास्तविक दर्शन झेन फ़िलसूफ़ी का एक बिंदु है। आप पूरा 'बालकांड' देखिए, इसमें पूरा झेन के इस विचार का वो है वास्तविकता। मैं कितने दृष्टांत दूं 'बालकांड' से? पहली वास्तविकता ये है, भगवान राम ब्रह्म होते हुए जनम लिये तो राम रो रहे हैं। बालक को रोना चाहिए। राम शादी करने जाते हैं। ब्रह्म की शादी? ब्रह्म को क्या? वास्तविक दर्शन है ये। ये झेन का जो सात बिंदु में से एक वास्तविक दर्शन ये 'बालकांड' पूरित करता है।

झेन स्वभाव का दूसरा बिंदु है सर्जनात्मक प्रवृत्ति। झेन स्वभाव कुछ न कुछ सर्जन करता है। चित्र करता है; संगीत करता है; कम्पोज़ करता है; खेती करता है। 'अयोध्याकांड' पूरा सर्जनात्मक है। विश्वमंगल के लिए राजा क्या सर्जन करना चाहते थे? अयोध्या क्या सर्जन करना चाहती थी? भगवान राम की सहजता वन का सर्जन

कर देती है कि मुझे अब वन में जाना चाहिए। क्योंकि कई आदिवासी, वनवासी, भील, कौल-किरात दूरदराज बैठे हैं। शताब्दियों से मार खा रहे हैं। वो पास नहीं आ सकते हैं, मुझे जाना चाहिए। नवसर्जन की बात 'अयोध्याकांड' ने की है। राजाशाही का नियम है कि जो बड़ा बेटा होता है वो ही उत्तराधिकारी होता है युवराजपद के। राम कहते हैं, वो परंपरा तोड़नी चाहिए, नवसर्जन करना चाहिए। राम का सर्जनात्मक चिंतन चौपाई में लिखा है-

बिमल बंस यहु अनुचित एकू।
बंधु बिहाइ बड़े हि अभिषेकू।।

मेरे निर्मल वंश में एक ये धब्बा है; अनुचित है। मेरे तीन लायक भाई रह जाय और मैं केवल उम्र में बड़ा हूं इसीलिए मुझे युवराजपद मिले ये नहीं, एक नया सर्जन होना चाहिए। सर्जनात्मक स्वभाव ये झेन का दूसरा बिंदु है वो मुझे 'मानस' के 'अयोध्याकांड' में मिलता है। नया विचार कि जहां एक अकिंचन केवट को भगवान कहते हैं; परमात्मा, दातारों का दातार, ईश्वर के रूप में लो तो भगवान क्या नहीं देता? ऐसा ब्रह्म एक अकिंचन के पास भीख मांग रहा है, नौका की मांग करता है। भगवान कहना चाहते हैं कि मैं कितना भी समर्थ हूं लेकिन निम्न आदमी ये न समझे कि हम तो कुछ नहीं कर सकते। तू भी समर्थ को दे सकता है। और भगवान राम केवट को सबकुछ देते हैं लेकिन राम महसूस करते हैं कि मैंने केवट को कुछ नहीं दिया। और केवट को कुछ नहीं मिला लेकिन केवट कहता है, 'नाथ आजु मैं काह न पावा।' ये चिंतन सर्जनात्मक चिंतन जो आया है ये 'अयोध्याकांड' में, दूसरा बिंदु सिद्ध करता है।

जीवन की सजगता, सावधानी जीवन ये झेन स्वभाव 'अरण्यकांड' में दिखता है। 'अरण्यकांड' का हरेक मुनि सावधान है। एक लेडी तक सावधान है अनसूया। लक्ष्मणजी तो सावधान ही सावधान है लेकिन विशेष रूप में 'अरण्यकांड' में लक्ष्मणजी सावधान है। जागृति परिचायक है ये तीसरा झेन बिंदु। साधक जागृत हो। ये 'अरण्यकांड' उसकी ओर इंगित करता है। चौथा झेन स्वभाव का जो बिंदु है करुणामय अनासक्ति ये 'किष्किन्धाकांड' में है। भगवान राम ने करुणा की कि मारा-मारा फिर रहा सुग्रीव राजा बन गया और जिसके कारण वो आदमी बामुश्किल बचता रहता था उस वाली को निर्वाण दिया। लेकिन इतनी करुणा करने के बाद भगवान राम ने किष्किन्धा के राज्य में कोई आसक्ति खड़ी नहीं की। राजा! ये राज तुझे मुबारक। मेरा काम करुणा का, कर दिया। मैं प्रवर्षण पर्वत पर चातुर्मास करूं। करुणामय अनासक्ति का बोध 'किष्किन्धाकांड' देता है। प्रसन्नता से एक आसन लगाकर बैठ जाना ये पांचवां बिंदु। 'सुन्दरकांड' में जानकीजी, यदि थोड़ा संताप है लेकिन जानकीजी एक जगह बैठी है। एकांत में स्थित है इसीलिए जानकी भी सुंदर है और जानकीजी जिस प्रसंग में वहां आई उस कांड का नाम भी सुंदर है।

जीवन की बिलकुल सादगी, जो है वो कुबूल करके जीना, ये छठ्ठा झेन बिंदु वो 'लंकाकांड' में है। 'लंकाकांड' और सादगी? जहां लिखा है-

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना।

सोने की लंका है! लेकिन वहां सहज एक प्रकार की स्थिति है ऐसी लंका में भगवान राम आ गये। काल को भी समाप्त कर दे ऐसे काल के भी काल परमात्मा आये हैं उसी समय भी रावण सहज असंग! आ गये, आ गये! दशरथ का बेटा! ये मेरी असंगता कैसे गंवाउं? सोने के हिंडोले पर बैठा है। मंदोदरी दायीं ओर बैठी है। किन्नर, गंधर्व आ गये हैं। अप्सराएं आसमां से उतरी है। यहां मौत खड़ा है, यहां मेहफ़िल सजी है! ये सहजता है। तुम कितने ही आभूषण पहनो, मुबारक! लेकिन कीमती से कीमती आभूषण पहनने के बाद भी यदि आप सहज है तो आप सादगी में जी रहे हैं। और आप बिलकुल दिगंबर रहो और सहज न हो तो आपकी सादगी नहीं है, आडंबर है। सहजता वस्त्र नहीं है, वृत्ति है। वृत्ति कहना भी झिझकर बोल रहा हूं, 'स्वभाव' ज्यादा अच्छा शब्द है।

राम ब्रह्म है ये तो आप कुबूल करेंगे। जो अवतार में मानते हैं इसके लिए राम ईश्वर है, राम ब्रह्म है, राम परमतत्त्व है, राम भगवान है। भगवान किसीको कहो तो ऐश्वर्य होना ही चाहिए। छः प्रकार के भग जिसमें हो उसको ही हमारे शास्त्रों में भगवान कहते हैं। राम में छः हो है। फिर भी राम की सादगी 'लंकाकांड' में देखोगे। समग्र जीवन में सादा जीवन ये झेन का छठ्ठा बिंदु है। कौन-सी

सादगी? मैं बहुत जगह पर इंगित कर सकता हूं। लेकिन एक ही-

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा।
देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।

राघव की सहजता ईश्वर होते हुए भी! लंका से रावण रथारूढ़ होकर तपस्वी राम के साथ भीड़ने के लिए आया और बिभीषण इस दृश्य को देखते ही कहता है कि महाराज, आप तो परम है लेकिन संसारी होने के नाते मुझे जरा चिंता हो रही है कि रावण रथी है और मेरा ठाकुर बिरथ रघुबीरा है; नंगे पैर रथहीन है। महाराज, ऐसे प्रभावशाली शत्रु को कैसे जीता जायेगा? आपके पैर में पदत्राण भी नहीं है! कोई कवच नहीं है! राम कहते हैं 'लंकाकांड' में विभीषण, जिससे विजय होती है वो ऐसे स्थूल रथों से नहीं हुआ करती है। जिससे विजय होती है उस रथ का नाम है 'धर्मरथ।' और धर्म मानी? जो सहज हो वो धर्म, ओर नहीं। प्रत्येक असहजता विकृति है। इसीलिए बुद्ध को लगा कि यज्ञ में विकृतियां आ गई है। यज्ञ सहज नहीं रहा तो तथागत बुद्ध ने यज्ञ का विरोध किया। और असहज लोगों ने बुद्ध के सहज विचार को पचा नहीं पाया और बुद्ध को निकाल दिया कि आप वेद विरुद्ध बात करते हैं! सहजता दुनिया सह नहीं सकती है!

आज का पहला सूत्र याद रखियेगा कि महान सहज होता है कि नहीं वो कहना कठिन है लेकिन सहज कायम महान होता है। 'विभीषण, जिससे विजय होती है वो सहज स्वधर्म के रथ से होती है, ऐसे आडंबरों से नहीं होती है। ये राघव की सहज जीवन की कोई व्यवस्था है। ये झेन स्वभाव का छठ्ठा बिंदु है। और सातवां बिंदु है चिरंतन यौवन। और मेरे 'उत्तरकांड' में एक पुरुष ऐसा है-

तजउँ न तन निज इच्छा मरना।

मेरा कागभुशुंडि है चिरंतन यौवन। उसकी कथा सुननेवाले वृद्ध हो गये, कथा सुननेवाले बूढ़े हो गये हैं; कथा गानेवाला मेरा भुशुंडि चिरंतन यौवन है। गुरु जुवान है, शिष्य वृद्ध है। यहां कुछ ओर भीतरी वस्तु को पूजनेवाला भारत मूलक है! वहां से बुद्धविचारधारा जपान आई। ये बोधिवृक्ष की एक शाखा, एक ब्रान्च जो क्योटो तक आई।

भगवान राम का जन्म हुआ। फिर तीनों भाईओं का जन्म हुआ। चारों का नामकरण हुआ। विश्वामित्र आये। राम-लक्ष्मण को ले गये। यज्ञ पूरा हुआ। अहल्या का उद्धार किया। राम जनकपुर गये। बाग में सीता-राम मिले और उसके बाद धनुषभंग हुआ। जानकी ने जयमाला पहनाई। और फिर मागसर शुक्ल पंचमी के दिन राजा बारात लेकर आये। जानकी और राम की शादी हुई। फिर तीनों भाई ब्याहे। और फिर बारात लौट आई।

'अयोध्याकांड' में राज मिलना था। राम को चौदह साल का वनबास हुआ। राम चित्रकूट पहुंचे। पिता की मृत्यु हुई। भरतजी सब को लेकर चित्रकूट गये। पादुका लेकर लौट आये। 'अरण्यकांड' में भगवान आगे बढ़े। सती अनसूया ने पतिव्रता धर्म का उपदेश दिया जानकी को। मंत्रणा हुई। प्रभु कुंभज के पास आये। प्रभु ने पंचवटी के तट पर कुटिया बनाकर निवास किया। शूर्पणखा आई। दंडित हुई। खर-दूषण, त्रिशरा आये। निर्वाण प्राप्त हुआ। शूर्पणखा ने रावण को उकसाया। रावण आया मारीच को लेकर। यहां परमात्मा ने ललित नरलीला करने का फैसला लिया। जानकी की परछाई रखी। मूल जानकी अग्नि में समा गई। रावण आया। सीता का अपहरण हुआ। अशोकवाटिका में बंदी बनाई। भगवान राम विरही बनकर रो रहे हैं। जटायु मिले। जटायु ने कथा कही। जटायु को पितातुल्य आदर देकर भगवान ने जटायु का अग्निसंस्कार किया। वहीं से

मेरे पास बहुत लोग आते हैं, कहते हैं, 'बापू, हम ध्यान करते हैं तो मन लगता नहीं है! हम जप करते हैं तो मन ये करता है!' छोड़ो; तुम किए जाओ। मेरे भाई-बहन, मैं तो इतना ही कहूं, सहज जो हो, होने दो। आप ध्यान करते हो बुद्ध का और आपके दिमाग में महावीर आ गया तो सोचो कि बुद्ध ने ही महावीर को भेजा है। सहजता न गंवाओ। अपने स्वरूप का जिसको पहले से पता लग गया हो उसको पतंजलिवाले अष्टांगयोग के बीचवाले सभी सात सूत्र का अतिक्रमण हो जाता है। जिसको ऐसे सहज स्वरूप का भान हो जाता है उसको ध्यान, धारणा ये सब निकल जाता है।

भगवान सीता की खोज करते-करते आगे बढ़े। कबंध को मारा और शबरी के आश्रम में आये। शबरी प्रभु की स्तुति करती है। भगवान उसको नव प्रकार की भक्ति की बातें कहते हैं। उसके बाद शबरी योगाग्नि में अपने को विलीन करती है।

'किष्किन्धाकांड' में भगवान आगे बढ़े। हनुमानजी और राम की भेंट हुई। हनुमान के माध्यम से राम और सुग्रीव की मैत्री हुई। वालि को निर्वाण और सुग्रीव को किष्किन्धा के राजा की पदवी मिली। अंगद को युवराजपद दिया। प्रभु ने चातुर्मास प्रवर्षण पर्वत पर किया। फिर सीताशोध का अभियान चला। दशों दिशा में बंदर-भालू भेज दिये। दक्षिण में खास टुकड़ी को भेजी जिसके नायक थे अंगद; मार्गदर्शक थे जामवंत; अन्य साथ थे और सब के पीछे हनुमानजी। भगवान ने मुद्रिका हनुमान को दी। सीतान्वेषण शुरू होता है। संपाति मिला। सब ने अपने-अपने बल को घोषित किया। कोई लंका में जाके लौटे ऐसा नहीं निकला। आख़िर में हनुमानजी को आह्वान किया जामवंत ने। पर्वताकार रूप बाबा ने लिया। बार-बार प्रणाम करके, मार्गदर्शक से मार्गदर्शन लेकर के हनुमानजी लंका जाते हैं।

'सुन्दरकांड' शुरू होता है। लंका में हनुमानजी जाते हैं। रावण आदि के घर में देखते हैं। सीता न मिली। विभीषण से मैत्री हुई। जानकी को दिखा दिया। उसी समय रावण आता है। रावण के जाने के बाद सीता बहुत दुःखी हुई। हनुमान ने मुद्रिका डाली। फिर तो फल खाये, तरु तोड़े। अक्षयकुमार आया, मरा। मेघनाद आया। हनुमान को बांधकर रावण के दरबार में ले गया। विभीषण आया। कहा, नीति मना करती है, दूत को न मारा जाय! आन दंड कछु दिया जाय। विभीषण ने प्रस्ताव रखा। रावण ने माना। मंत्रीमंडल की आपातकालीन बेठक मिली। अने आ जगत एवुं छे के जे जानकीनां दर्शन सुधी पहोंचे ने एनी प्रतिष्ठारूपी पूंछने ज बाळवानी कोशिश करे छे साहब! क्योंकि प्रतिष्ठा ये पूंछ है। पूरी लंका जला दी। और साहब! साधु जो होता है उसकी प्रतिष्ठा को जलाने के लिए समाज कोशिश करे तो समाज जलता है, साधु नहीं जलता। श्री हनुमानजी महाराज लंका को जलाकर, माँ का संदेश लेकर पार आये। सब सुग्रीव के पास गये। रामजी को चूडामणि बताया। सेना ने प्रस्थान किया समंदर के तट पर। यहां तीन दिन भगवान अनसन करने बैठे। विभीषण भी आया। शरणागत हुआ। आख़िर में भगवान ने तीर चलाया तब एकदम जलचर अकुलाने लगे! ब्राह्मण का रूप लेकर समुद्र शरणागत हुआ। सेतुबंध का निर्णय। 'सुन्दरकांड' पूरा।

'लंकाकांड' शुरू। सेतुबंध तैयार। रामेश्वर की स्थापना। एक श्लोक में 'रामायण।' और कागभुशुंडि ने इस शैली का प्रयोग 'मानस' में किया है इसीलिए उस शैली में बोलने का मुझे एक थोड़ा विनम्र अधिकार मिल जाता है। क्योंकि भुशुंडि ने ऐसे संक्षेप में 'उत्तरकांड' में 'रामायण' कह दी। मैंने तो थोड़ा विस्तार किया! तो चिंता मत करना, कल कैसा होगा! 'सुन्दरकांड' पूरा हो गया है। रामेश्वर की स्थापना हो गई है। और जहां कल्याण की स्थापना होती है न वहां रावण को मरने में देर नहीं लगती! तो बाप! कहने को तो बहुत जी करता है, बहुत आनंद आ रहा है लेकिन-

एक पल है हंसना, एक पल है रोना...
कैसा है जीवन का खेला।
एक पल है मिलना, एक पल बिछड़ना,
दुनिया है दो दिन का मेला।

इसीलिए ये पर्टिक्यूलर मोमेन्ट-

ये घडी न जाये बीत,
तुझे मेरे गीत बुलाते हैं।

फिर मेरी चौपाईयां आप को बुलायेगी क्योंकि आप न हो तो मैं किसको सुनाउं?

मेरा सुना पड़ा है संगीत,
तुझे मेरे गीत बुलाते हैं,
आ लौट के आजा मेरे मीत...

•

मंगल भवन अमंगलहारी।
द्रवउँ सो दसरथ अजिर बिहारी।।

•

संकर सहज सरूपु सम्हारा।
लागि समाधि अखंड अपारा।।

बाप! आठवें दिन की कथा यहां विराम ले रही है। कल सुबह फिर भगवद्चर्चा करेंगे।

सहजता स्वधर्म है, असहजता परधर्म है

बाप! नव दिवसीय रामकथा के आज विराम के दिन फिर एक बार यहां की समग्र सहज चेतनाओं को प्रणाम करते हुए कथा में उपस्थित आप सभी और अन्य सभी को भी व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। कल सायंकाल जो यहां एक कार्यक्रम प्रस्तुत हुआ। हमारे वो आदरणीया बहनजी जिसने जापान और भारतीय नृत्य को, सभ्यता को सांस्कृतिक बातों को जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। और उसके फलस्वरूप कल हमने यहां के भाई-बहनों का यहां का नृत्य भी देखा, वाद्य भी सुना। नृत्य के आज के जगत के तो प्रथम पंक्ति के नृत्यकार आदरणीय पंडित बिरजू महाराज की और आप के सुपुत्र जिसने कथ्थक नृत्यविद्या प्रस्तुत की। बहुत-बहुत बधाई; शुभकामना। मैं मेरे निवास पर पहुंचूं तो बीच में ही मुझे टेलिफोन पर संदेश मिला कि जलारामबापा की परंपरा के वर्तमान गादीपति पूज्य जयसुखरामबापा निर्वाण प्राप्त कर गये। जिसका भजन और भोजन विश्व में व्याप्त हुआ। भजन थे जलारामबापा, भोजन थी वीरबाई माँ। मानो भजन और भोजन ने शादी की थी वीरपुर में। और पूरे विश्व में ये दो ही बात पर जिसके प्रति बड़ी श्रद्धा रखनेवाले बहुत बड़ी मात्रा में भाई-बहन है। इसीलिए हमने श्रद्धांजलि यहां पेश की।

मेरा वीरपुर जलारामबापा की परंपरा के साथ करीब चालीस साल का आत्मीय संबंध। फिर व्यासपीठ के प्रति भी उसका बहुत स्नेहादर रहा, भरोसा रहा और आप सब जानते हैं कि एक हजार आठ रामकथा जब एइटी वन में महुवा में हुई; प्रसिद्धिमुक्त और निष्काम भाव से उस समय व्यासपीठ की सेवा इस परिवार ने बहुत की थी। और आज तक उसकी सेवा निष्काम भाव से सब के लिए चलती रही, जिसकी व्यासपीठ बहुत निकट से साक्षी है। और सब से बड़ी बात तो मुझे अंजलि देते हुए ये कहनी है जयसुखरामबापा के मन में और उसके परिवार के मन में एक कसक रहती थी और उसका व्यासपीठ के प्रति आदर था, विश्वास था। तो मुझे दो-तीन बार पूछा कि आप जो कहेंगे हम करेंगे लेकिन हमें जलारामबापा प्रेरणा देते हैं और हम एक बहुत बड़ा कठिन व्रत लेना चाहते हैं। तो मैंने कहा, बापा, मैं तो क्या सलाह दूं? लेकिन उन्होंने कहा, हमारे जलारामबापा के स्थान में साल में करोड़ो रूपये आते हैं। हमारी इच्छा है, हम पैसे लेना बंद

कर दे। मैंने बात टाली। क्योंकि मेरे निर्णय पर वो निर्णय लेनेवाले थे। मैंने कहा, बापा, ये तो मुझे बहुत अच्छा लगा कि आप के मन में इतना बड़ा संकल्प उठ रहा है। लेकिन मैं कहूंगा कि एक बार आप फिर पुन: विचारणा करे, परिवार के छोटे से छोटे बालक का भी अभिप्राय ले। ये वामन का तीसरा कदम है बापा, मैंने कहा था। एक कदम तो था कि जब वीरपुर में जलारामबापा और वीरबाई माँ ने कोई भी स्थिति हो रोटला शुरू किया था। वो पहला कदम था। दूसरा कदम था, कहते हैं श्रद्धाजगत कि परमात्मा साधु के वेश में भिक्षा लेने के लिए आते हैं और भिक्षा में वो वीरबाई माँ की मांग करते हैं। और जलारामबापा वीरबाई माँ को साधु को सोंप देते हैं। मैं तो इतना कहूंगा कि जलारामबापा ने एक कामिनी तो दी ही होगी, लेकिन साधु के चरणों में कामना दे दी थती। कामना का समर्पण था। मुझे लगता है कि कामिनी के रूप में बापा ने कामना एक साधु को समर्पित कर दी होगी और कामना लेकर वो साधु जिसको श्रद्धाजगत ईश्वर कहते हैं उसने माँ वीरबाई माँ को लौटा दी होगी। कोई भी अर्थ हम कर सकते हैं लेकिन ये दूसरा कदम था कि माँ वीरबाई माँ का दान करना। और तीसरा कदम, मंदिर में जो आता था वो छोड़ने का संकल्प।

मुझे याद है बराबर मैंने दो-तीन बार ये बात टाली थी और पूरी तीव्रता जब आई तो मैंने कहा, बापा, त्याग की बात कोई करे तो मुझे बहुत आनंद होता है। मैं सही कहता हूं। क्योंकि अमृत की प्राप्ति त्याग से होती है, ऐसा उपनिषदों ने कहा है। तो एक बहुत बड़ा कदम बापा उठाने जा रहा था। मैंने कहा, त्याग की बात तो मुझे बहुत-बहुत अच्छी लगती है बापा। अब निर्णय है तो मेरी प्रसन्नता है। और साहब! उसी क्षण से भेट लेना बंद कर दिया! और मैं आप को बताउं, लोगों को तो ऐसा लगता होगा कि बहुत व्यवस्था करके छोड़ा होगा। मैं साक्षी हूं कि कोई इतनी व्यवस्था करके नहीं छोड़ा है। मैंने कहा था कि बापा, आगे का सौ साल तक का सोचकर छोड़ियेगा क्योंकि महंगाई बढ़ेगी और इस स्थान की रोटी चालू रहनी चाहिए। वीरपुर की महिमा 'ब्रह्मक्षेत्र' के कारण है। अन्नक्षेत्र को ब्रह्मक्षेत्र कह दिया मैंने इस कथा से। और ब्रह्मक्षेत्र था इसीलिए तो ब्रह्म कभी भिक्षा के नाते आया था यहां रोटी खाने के लिए। आर्थिक स्थिति का भी मैं साक्षी हूं। लेकिन त्याग गिनती थोड़ा करता है? और बापा ने उसी क्षण एक बहुत बड़ा तीसरा कदम उठा लिया था। इसका मतलब कि देवस्थान-धर्मस्थान में लोग पैसा रखे ये खराब है? नहीं, प्लीज़, कोई गलत अर्थ न करे। रखना चाहिए। सद्कर्म में साधुसंत उसका उपयोग करते होंगे। लेकिन शायद एकमात्र स्थान है कि जहां एक भी पैसा लिया नहीं जाता है। ऐसे जलियाण चेतना की परंपरा जो है उसके एक धारण करनेवाले जयसुखरामबापा हमारे बीच नहीं है। मैं उसके निर्वाण को प्रणाम करता हूं। परिवारजनों को व्यासपीठ से आश्वासन देता हूं। बापा के हजारों-लाखों सेवकगणों को भी मैं यहां से ढ़ाढ़स देता हूं। और मेरी व्यासपीठ के साथ जुड़े हुए असंख्य श्रावक भाई-बहनों की सब की ओर से बापा, आप के चरणों में हमारी श्रद्धांजलि।

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीतारामम।
सीताराम, सीताराम, भज मन प्यारे सीताराम।

आइए, अब 'मानस-सहज।' तो बाप! सहजता की कोई सीमा नहीं होती। वो तो अनंतयात्रा है। इसीलिए देश-काल में बद्ध हम जैसे संसारी लोग कोई भी विषय या कोई भी बात उठाते हैं तो उसको देश-काल की मर्यादा में रखना पड़ता है। तो आज कुछ आख़िरी उपसंहारक सूत्र को मेरे आंतरिक विकास और विश्राम के लिए जो फायदाकारक हुआ है वो आप के सामने पेश कर रहा हूं।

मैंने एक बार आप के सामने बोकुजु की बात कही थी कि झेन साधु बोकुजु जिसके जीवन में 'मानस' में भरत और राम के मिलन में पांच विघ्न जो आते हैं वो क्रमांतर से ये पांचों विघ्न आये थे। आज आख़िरी दिन है। एक छोटी-सी किताब केवल बोकुजु के नाम पर है। केवल पचीस पन्ने हैं उसमें। 'झैनी चेतना बोकुजु।' उसकी बहुत प्यारी एक बात है। मैं आप से आज कहना चाहता हूं। बोकुजु के पास कोई आता था, बड़ा पहुंचा हुआ साधु, झेन मास्टर रहा। तो जैसे हमारे घर कोई आये हम उसका सन्मान करते हैं कि चाय लो, ठंडा लो, हम हमारी औकात के अनुसार हम करते हैं। बोकुजु दो कप रखता था। उसमें था कुछ नहीं। खाली; एम्प्टी कप; नितांत खाली। और कोई भी मेहमान आता था और फिर वो कहता था कि आप क्या लेंगे? ये लेंगे कि ये लेंगे? अब कोई सामान्य आदमी जाता तो वो तो मुश्किल में पड़ जाता कि ये क्या है? वो स्वाभाविक कप लेके देखेगा तो जरूर। और दोनों देखते हैं तो खाली होता है! और सोचते है कि ये हमारी मज़ाक तो नहीं है? हमारे साथ ये शालीन व्यवहार नहीं है! लेकिन झेन स्वभाव का साधक यदि जाता तो पहचान जाता। थोड़ा बाकी होता तो बोकुजु पूरा करता। और कोई जब पूछे कि साधो, आपने दो कप रखे हैं और आप ने ओफर की है कि क्या लोगे ये कि ये? और हम समझ नहीं पा रहे हैं आप की रीत को! हम हमारी छोटी दृष्टि से तो देखते हैं तो ये दोनों कप खाली है! और दोनों कप बिलकुल समान है। बोकुजु को जब लगता कि साधक पक्का जिज्ञासु है तब उसको कहते थे। तो आधा-आधा अभी पहुंचा हुआ नहीं है ऐसा जिज्ञासु कभी पूछता है, बाबा, बोकुजु, आप बताइये न ये दोनों कप जो खाली है! और आप की कोई भी चेष्टा अर्थहीन नहीं होती है।

याद रखना मेरे भाई-बहन, बुद्धपुरुष के उस संकेत को समझना। उसकी बोड़ी लेंग्वेज को समझना। बोली लेंग्वेज को मारो गोली! उसकी बोड़ी लेंग्वेज समझना। बुद्ध कभी-कभी बैठते थे। आंख में आंसू बहते थे और कहते हैं, फिर बुद्ध खड़े हो जाते थे और होता था आनंद घोषणा कर देते हैं आज का प्रवचन पूरा हो गया। संकेत बहुत कुछ कह जाते हैं। बुद्धपुरुष संकेतों से बोध देता है। तो बुद्धपुरुष के पास ज्यादा बोलना नहीं चाहिए और बुद्धपुरुष जो स्वाभाविक सहज है वो भी ज्यादा नहीं बोलता है। बोकुजु ये पात्र रखकर फिर कोई जिज्ञासु को कहता था कि ये पात्र जो है दायीं ओर उसमें अमृत है। और ये है उसमें ज़हर है। आगंतुक ने कहा, ये माजरा आप ने ओर जटिल कर दिया! एक तो खाली पात्र है और नाम दे दिया कि इसमें अमृत है और इसमें ज़हर है! दिखता नहीं है! बाबा कुछ ओर खुलासा करे कि ये क्या बात है? तब हमारा विषय चल रहा है वो शब्द आता है। उसका भाषांतर करके मैं अपने शब्दों में डालूंगा। उसने कहा, ये दायीं ओर जो कप है न उसमें सहजामृत है; सहज अमृत है। और ये जो विष है वो असहजता। बोकुजु कहता है, सहजता अमृत है, असहजता विष है। जैसे मेरी व्यासपीठ ने कहा, सहजता स्वधर्म है, असहजता परधर्म है। ये बोकुजु की पद्धति थी। और मुझे बड़ा प्यारा वचन लगता है।

मेरे भाई-बहन, सहजता अमृत है, असहजता विष है। फिर बिलकुल उपनिषद की बात उठ जाती है मेरे मन में कि ये बात छांदोग्य उपनिषद ओलरेडी कह चुका है। तो बोकुजु कहता है कि ये सहज अमृत है। असहज विष है। अब रहस्य ओर जटिल कर देता है! वो कहता है, ये जो विष है असहजता इसको आप को पीना पड़ेगा। और सहजता का जो अमृत है केवल सूंघ लो अमर हो जाओगे। ये पीना पड़ेगा, ये जीना पड़ेगा। सहजता का अमृत जीने का अमृत है, पीने का नहीं। और मैं जब बोकुजु को पढ़ रहा था तो फिर चित्त में चमकारा हुआ कि ये बात तो छांदोग्य उपनिषद में दिखती है! तो वो मुझे एक मंत्र मिला वो मंत्र मैं बोलूंगा और आप से बुलवाउंगा। आइए, आज की कथा का आरंभ वेदमंत्र से करें।

न वै देवा अश्नंति पिबत्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।

देवतालोग एक ऐसा अमृत है, जिसको खाते नहीं, पीते नहीं, केवल देखता है। देखो, वेद सीधा बोकुजु में उतरा है! तपोवन से सीधा क्योटो! कैलास से क्योटो! सीधा वेद आया। देवता लोग केवल उसको देखते हैं और देखने मात्र से 'तृप्यन्ति।' उसको तृप्ति हो जाती है। ये अमृत है सहजामृत। सहजता का अमृत। पर्याय शब्दों में आनंद का एक पर्याय शब्द है 'अमृत।' आनंद मानी अमृत भी। और राम क्या है? मेरे गोस्वामीजी कहते हैं-

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू।
रामु सहज आनंद निधानू।।

'न वै देवा अश्नंति', एक ऐसा अमृत है। जिसको देव खाते नहीं है। 'न पिबत्येत्', उसको पीते नहीं। 'देवामृतं दृष्ट्वा' उसको देखते ही 'तृप्यन्ति', तृप्त होते हैं। पहला तो ये निर्णय करना पड़ता है कि ये कौन देवता है? उपरवाले देवता? जो अमृत खाते नहीं, पीते नहीं हैं। उपरवालें तो स्वार्थी है! ये तो अमृत के लिए लड़ रहे हैं! अमृत पीने के लिए जो अमृत का कलश छिन कर भाग गये थे! ये तो ठाकुरजी को लीला करनी थी इसीलिए मोहिनीरूप लिया और मोहिनीरूप का ठुमका देखकर राक्षस दीवाने हो गये अहाहाहा! क्या बात है! घूमने लगे ईर्द-गिर्द! आप कौन है? तब कहा कि ये अमृत बहुत कीमती है। तुम लोग ठीक से बांट नहीं पाओगे। मुझे दे दो, मैं सब को ठीक से परोस

दूंगी। तो मोहिनी अमृत परोसती है। तो इसमें तो संघर्ष है। तो ये कौन-सा अमृत है जो केवल देखने से तृप्ति होती है। तब उपनिषदकार कहते हैं, वो उपरवालें स्वार्थी देवता नहीं। सब से पहले 'तैतरीय' कहता है कि लोगपाल बनाई गई। लोगपाल को कहां बिठाये जाय? इसीलिए मनुष्य की बोड़ी बनाई गई। और मनुष्य के शरीर में एक-एक देवता का स्थापन किया। मुख बनाया, अग्निदेव को स्थापित किया। कान को बनाया, दिशा के देवताओं को स्थापित किया। नाक बनाया, वायुदेवता को स्थापित किया। जीभ बनाई। वरूण देवता को, रसदेवता को स्थापित किया। यम को अपान का देवता बनाया। लिंगादि को प्रजापति देवता को स्थापन किया है। ये पूरा शास्त्रीय पाठ है।

सूर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम।।

'मानस' का ये दोहा जिसमें देवताओं गर्भस्तुति करके गये और फिर राम प्रगट हुए क्योंकि राम को मनुष्य अवतार लेना था। ये लोगपाल देवता थे वो जाय कहां? परमात्मा के श्री विग्रह में। प्रत्येक लोगपाल देवता हमारी बोडी में निवास करता है। मुझे लगता है, अमृत का सद्उपयोग जितना मनुष्य जानता है इतना देव भी नहीं जानता है। क्योंकि इन्द्रियों का प्रत्येक देवता अमृत का दर्शन करता है। खाता नहीं है। खाना भोग है। इवन पीना भी भोग है। अमृत भोग्य सामग्री नहीं है। अमृत कोई बिलग सामग्री है। और याद रखना, सहजता नहीं है तो अमृत पी जाओगे तो अमर तो हो जाओगे लेकिन अभय नहीं हो पाओगे। और सहजता होगी तो शंकर के समान ज़हर पी जाओगे तो भी मरोगे नहीं। फिर कवि काग की पंक्ति याद आती है-

झडपेला अमृतथी सुरनां, चित्त कदी नहीं स्वस्थ थशे,
झोंटेलुं अमी अमर करे पण, अभय नहीं आपी शकशे,
कोईना जीवननो विषप्यालो, पी जानारो अमर थशे,
'काग' अवरनुं अमृत झोंटी पीशे, ते पहेलां मरशे।

और जिसमें अभय नहीं वो अमरता दो कौड़ी की है साहब! 'श्रीमद् भगवद्गीता' के सोलहवें अध्याय में दैवीसंपदा का पहला सूत्र है 'अभय।' 'किष्किन्धाकांड' में लिखा है-

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे।
दीन जानि तेहि अभय करीजे।।

हनुमान राम को कहते हैं, सुग्रीव से मैत्री करो महाराज और उसको अभय बना दो। तो लोकपाल देवता हमारी बोडी में अंग-अंग में प्रतिष्ठित है। वो दैवी संपदा, वो देवताई स्थिति अमृत खाती नहीं, अमृत पीती नहीं, अमृत को देखती है और 'तृप्यन्ति।'

तो मेरे भाई-बहन, सहजता है अमृत। उसको पीना नहीं है, पीओगे तो खतम हो जाएगा। जीना पड़ेगा। और जो जीता है वो अमर हो जाता है। शाश्वती उसको प्राप्त होती है। बोकुजु दो कप रखता था। एम्प्टी ग्लास, टोटली एम्प्टी। एक ग्लास था सहजता के अमृत का और दूसरा था असहजता के विष का। स्थूल रूप में कुछ नहीं था, सूक्ष्म रूप में सब कुछ था।

तो महादेव सहज है इसीलिए अखंड समाधि सहज प्राप्त करते हैं। महादेव सहज उदासी है इसीलिए सर्प के भूषण में सुशोभित है। जिसका बैठना, उठना, सोना, जागना बिलकुल प्राकृतिक है, सहज है। तो सहजता है अमृत, असहजता है विष। नजरों से ये नहीं दिखता है। महसूस किया जाता है। और शाश्वती मुठ्ठी में आती है। तो सभी सयाने एक मत। एक सौ छः बार 'मानस' में सहजता का जिक्र हुआ। उस शास्त्र के साथ कहीं वेद भी जुड़ जाता है, कहीं क्योटो की ये झेनस्वभाव की बातें भी जुड़ जाती है।

मेरी प्रसन्नता है कि सहज आयोजन। सहज समय पर हम आ गये, आप आ गये। कथा शुरू हुई, आज विराम की ओर जा रही है। बड़ा सुचारु रूप से नवदिवसीय ये सहज सब चला। आनंद आया। नरेश पटेल मुझे कल कहे, बापू, आप की इतनी कथा में मैं निमित्त बना। इसमें जो दो-दो पंक्तियां आपने उठाई थी वो सब लिखकर वो आये थे। स्वाभाविक थोड़े ढ़ीले होकर कहे बापू, मेरी यही संपदा है। आज मेरी जेब खाली है। कुछ जेब में डाल के जाओ! तो युवानों ने, इन बच्चों ने, मैं किन-किन का नाम लूं? और मेरा तो आप से वादा है कि मुझे नव दिन दो, मैं आप को नवजीवन दूंगा। I want your nine days, I will give you divine life. एक कथा से न मिले तो दूसरी कथा में आना। मैं आप को न दे पाउं तो तुम्हारी पात्रता का दोष नहीं, मेरी क्षमता कम होगी। हो सकता है मेरा भजन कमज़ोर रहा होगा।

तो बड़ा सुचारु रूप से ये नवदिवसीय सहज सब चला। आनंद आया। मैं मेरी प्रसन्नता पेश करता हूं 'मानस-सहज' के लिए। शेष कथा पूरी कर दूं। सेतुबंध बन गया था कल। जोड़ा राम ने सब को। और दुनिया जुड़ी जाती है रामनाम के प्रताप से। राम जोड़ता है, राम तोड़ता नहीं। राम ने सब को जोड़ा है। हमारा और आप का रिश्ता राम का रिश्ता है। और राम के रिश्ते में कोई लेन-देन नहीं होती है, कोई हिसाब-किताब नहीं होता। केवल राम का रिश्ता है। परिवार के परिवार जुड़ते जा रहे हैं भगवद्कृपा से। सेतुबंध हो गया। भगवान रामेश्वर की स्थापना की। तुम्हारा विचार जोड़ने का हो न तो जलचर जीव भी मदद करने आ जायेंगे। पत्थर भी मदद करने आ जायेंगे। यदि शिव विचार हो तो। सेतुबंध पार किया। सुबेल पर प्रभु का डेरा। दूसरे दिन रावण की सभा में संधि का प्रस्ताव लेकर राजदूत के रूप में युवराज अंगद जाता है। अंगद राजदूत है, हनुमानजी रामदूत है। प्रभु ने बहुत सुंदर विचार दिया है। एक वाक्य का एजंडा है। संधि प्रस्ताव लेकर जाता है रावण के दरबार में। पूछा कि किस मुद्दे पर चर्चा की जाय? तो राम का एजंडा देखिए। रामराज्य की कूंजी देखिये। राम ने एक वाक्य कहा, 'काजु हमार तासु हित होई।' अपना काम हो, जानकी मिल जाय, मेरा अवतार कार्य पूरा हो जाय और रावण का परम कल्याण हो इसी मुद्दे पर चर्चा करना। प्रयास कर लो, संधि हो जाये तो हमें संघर्ष नहीं करना है। ये भारतीय नीति है।

आख़िर में रावण माना नहीं। संधि असफल रही। युद्ध अनिवार्य हुआ। और घमासाण युद्ध होता है। इन्द्रजित की शक्ति लगी। अनंतावतार लक्ष्मणजी मूर्छित हुए। सुषेण ने औषधि का संकेत किया। हनुमानजी गये। संजीवनी ले आये। लक्ष्मणजी बैठ जाते हैं। फिर युद्ध चलता है। कुंभकर्ण आया। कुंभकर्ण को वीरगति। इन्द्रजित आया, उसको वीरगति। प्रत्येक व्यक्ति को निर्वाण दिया जा रहा है। युद्ध का मैदान बुद्धत्व की प्राप्ति का आंगन बन चुका था। और मुझे लगता है कि रामकाल में ये युद्ध ने बुद्धत्व को निर्मित किया इसीलिए शायद हो सकता है, हिन्दुस्तान से बौद्धधर्म पहली बार बाहर गया तो लंका में गया। फिर दुनिया में विस्तरित हुआ। सब को निर्वाण दिया। आख़िर में इकतीस बाण चढ़ाकर भगवान राम ने रावण के दस सिर, बीस भुजा, इकतीसवां बाण रावण की नाभि के अंदर मारा है। और जीवन में पहली बार और आख़िरी बार 'राम' शब्द का उच्चारण नाभि से किया, 'राम कहां है?' रावण का तेज प्रभु के चेहरे में समा गया। मानो सारूप्य मुक्ति मिल गई। मंदोदरी ने शोक व्यक्त किया। रामकी स्तुति भी की। बिभीषण को राजतिलक हुआ। भगवान राम ने हनुमानजी को कहा कि अशोकवाटिका में जाकर जानकीजी को खबर करो। हनुमानजी जाते हैं। माँ जानकी से कहते हैं, माँ, सकुल-सदल रावण का निर्वाण हुआ है। भगवान सकुशल है।

पुष्पक तैयार हुआ है। हनुमंत आदि सब को लेकर प्रभु पुष्पक आरूढ़ होते हैं। जो सहज होता है वो अकर्ता होता है। उसके अगल-बगल में उसके होने मात्र से क्रियाएं होती रहती है। राम विमान से जानकी को दिखाते हैं, जानकी, देख, यहां इन्द्रजित को लक्ष्मण ने मारा। यहां असुरों को जामवंत ने और अंगद ने मारा। हर स्थल को दिखाते हैं जानकी को ठाकुर और जहां रावण और कुंभकर्ण को मारा गया वहां राम कहते हैं जानकी, यहां रावण और कुंभकर्ण को मारा गया। किसने मारा? कर्ताभाव का लोप कर दिया! इसकी मूर्ति पूजी जाती है साहब!

हुं करुं हुं करुं ए ज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे।

और यहां भगवान ने एक जगह कहा है कि ये कार्य मैंने

बोकुजु कहता है, सहजता अमृत है, असहजता विष है। जैसे मेरी व्यासपीठ ने कहा, सहजता स्वधर्म है, असहजता परधर्म है। सहजता है अमृत। उसको पीना नहीं है, पीओगे तो खतम हो जाएगा। जीना पड़ेगा। और जो जीता है वो अमर हो जाता है। शाश्वती उसको प्राप्त होती है। महादेव सहज है इसीलिए अखंड समाधि सहज प्राप्त करते हैं। महादेव सहज उदासी है इसीलिए सर्प के भूषण में सुशोभित है। जिसका बैठना, उठना, सोना, जागना बिलकुल प्राकृतिक है, सहज है। तो सहजता है अमृत, असहजता है विष। नज़रों से ये नहीं दिखता है। महसूस किया जाता है। और शाश्वती मुठ्ठी में आती है।

किया है। भगवान कहते हैं, ये सेतु मैंने बांधा है। मैंने किसीको मारने का काम नहीं किया है, जोड़ने का काम किया है और कल्याण की स्थापना की है, विश्वमंगल की स्थापना की है। जानकी ने विमान से शिवजी को प्रणाम किया। प्रभु का विमान शृंगबेरपुर में उतरा जहां एक निषाद वंचित जिन्होंने प्रभु के चरण धोये और नौका में बिठाए और कुछ नहीं लिया था। भगवान को कहा था कि आप वापस आओ तब जो दोगे वो प्रसाद लूंगा। तो भगवान आये और केवट आदि गरीब लोग दौड़े। चौदह साल के बाद हम को याद रखा? पागल जैसे हो गये! भगवान ने केवट को कहा, केवट भैया! तेरी उतराई बाकी है न? बता, क्या दूं? केवट रो पड़ा! कहा कि महाराज, ये तो मेरी थोड़ी चतुराई थी कि मुझे दूसरी बार आप के दर्शन हो जाये। हमें कुछ नहीं चाहिए। आपने क्या नहीं दिया? आश्रय करने की वृत्ति आये तो आश्रयदाता के पास भुजाएं बहुत विशाल होती है लेकिन हमारे मन में आश्रय का विशुद्ध भाव हो।

'उत्तरकांड' के आरंभ में बड़ा विरही दृश्य है अयोध्या का। लोग पागल है, प्रभु कब आयेंगे? नहीं आयेंगे तो हम क्या करेंगे? और ये बेबाक नज़रें प्रतीक्षा कर रही है इतने में हनुमानजी आये, 'ठाकुर आ रहे हैं। सकुशल, प्रिया, अनुज के साथ आ रहे हैं।' पूरी अयोध्या में एक आनंद छा गया। यहां हनुमानजी वापस लौट गये राम को खबर देने के लिए कि अब विलंब न करे, जल्दी अयोध्या पहुंचे। और यहां भरत ने गुरुदेव को, समाज को खबर दी। पूरी अयोध्या बाहर निकल चुकी है। प्रभु का विमान सरजू के तट पर उतरा। भगवान विमान से उतरकर जन्मभूमि को प्रणाम करते हैं। और भरत को देखे। गुरुदेव को देखे। राम ने अपने धनुषबाण यहां तक रखे हैं, अब फैंक दिये हैं। गुरु के चरण पकड़ लिए हैं। विश्व को मेसेज दिया कि एक बड़ा ओपरेशन था। मैं एक बड़ा ओपरेशन करके निज घर आया हूं। अब शस्त्र की जरूरत नहीं है, अब शास्त्रवेत्ता की शरणागति की जरूरत है। शस्त्र छोड़ दिये। ये था मेसेज अहिंसा का। परमात्मा ने अमित रूप धारण किये। जिसका जैसा भाव ऐसा प्रभु ने ब्रह्म साक्षात्कार सब का किया है।

आनंद में डूबी है अयोध्या। लेकिन राम ने गुरुदेव को कहा कि भगवन्, मुझे पहले मेरी कैकेयी माँ के महल में जाना है। प्रभु ने देखा कि मेरी माँ लज्जित है। माँ रो पड़ी। और प्रभु ने कहा कि माँ, रोना मत। ये तूने न किया होता तो तेरा राम इतना महान नहीं हो सकता! मैं वन नहीं गया होता तो मेरे में ताकत कितनी है वो मुझे पता नहीं लगता; सीता का सत्य कितना ये खबर नहीं पड़ती; भाई कैसा हो वो खबर नहीं पड़ती और दुश्मन कैसे हो ये पता नहीं लगता और हनुमान की ओर संकेत करके कहा कि सेवक कैसा हो ये पता नहीं लगता। कौशल्या के भवन में ठाकुर आये। जानकी के मस्तक की जटा देखकर माँ रो पड़ी! जानकीजी को सासुगणो ने स्नान करवाया। राम ने अपने भाईओं को स्नान करवाया। राम ने स्वयं अपने हाथों से स्नान किया। जगत को मेसेज दिया कि मैं जब तक गादी पर जानेवाला नहीं तब तक तो मैंने सब की सेवा ली। आज मुझे राज मिलना है तो मैं औरों की सेवा करूंगा। दिव्य सिंघासन लाया गया। और विश्व को रामराज्य देते हुए वशिष्ठ भगवान ने राम के भाल में तिलक सारा। रामराज्य की स्थापना हुई। सुग्रीव आदि बिदा ले गये। एकमात्र हनुमान अयोध्या में रहे हैं। दिव्य रामराज्य का वर्णन है।

समय मर्यादा पूरी हुई। राम की ललित नरलीला के एक भाग रूप जानकी ने दो पुत्रों को जनम दिया है। सगर्भा जानकी को दूसरी बार वनवास ये विवाद, अपवाद और दुर्वादवाली कथा तुलसीजी संवाद के शास्त्र में डालना नहीं चाहते हैं इसीलिए हटा दी। लव-कुश, वारिश के नाम बता दिये 'मानस' में फिर तुलसी ने रामकथा पर विराम कर दिया। 'उत्तरकांड' में बाबा कागभुशुंडि का चरित्र है। अद्‌भुत चरित्र है। गरुड के सात प्रश्न है आख़िर में। और सात प्रश्नों के उत्तर सद्‌गुरु भुशुंडि ने दिये हैं। पंख फैलाता हुआ आश्रित गरुड वैकुंठ गया। शिव ने पार्वती के सामने कथा को विराम दिया। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी के सामने त्रिवेणी के तट पर जहां संगम में तीन नदीओं का जल बह रहा है, शायद वहां कथा चल रही है। काश! हम सुन पाये! चौथे हैं तुलसी, जो शरणागति के घाट पर अपने मन से संवाद कह रहे थे; ऋषि-मुनिओं से संवाद कर रहे थे। तुलसी अपने घाट से कथा को विराम देते हुए लिखते हैं कि जिसकी लवलेश कृपामात्र से मेरे जैसे मतिमंद तुलसीदास आज परम विश्राम को प्राप्त करते हैं।

तुलसी ने कथा को विराम दिया; भुशुंडि ने दिया; शिव ने दिया; याज्ञवल्क्य का स्पष्ट नहीं है। शायद गंगा बहती रहेगी तब तक वो प्रयागी कथा चलती रहेगी। आज नववां दिन, ये मेरी व्यासपीठ यहां आई और नव दिन से मैं मुखर हूं। अब मैं मेरी वाणी को विराम देने की ओर हूं तब मेरे युवान भाई-बहन, छोटेछोटे बच्चे जो 'बापू, बापू' चिल्लाते रहते हैं; मेरे बुझर्ग सब मेरे वडीलगण; ओर मुझे कुछ कहना नहीं है। पूरे आयोजन से मैं संतुष्ट हूं। यजमान परिवार और आप सब को मैं आशीर्वाद तो क्या दूं? क्या औकात? लेकिन व्यासपीठ पर बैठा हूं तो उसके तप से थोड़ी हिम्मत करता हूं। 'वंशे सदैव भवतां हरिभक्तिरस...' सब के वंश में अच्छी चेतनाएं आये। बाप! सब की प्रसन्नता के लिए मेरे हनुमान के चरणों में मेरी प्रार्थना है।

आख़िर में एक बात जो कल मुझे मिली, 'बापू, कल कथा पूरी होगी फिर दूसरी कथा की प्रतीक्षा कैसे की जाये उसके लिए कुछ आधार देते जाइओ।' खुश रहो। यदि दूसरी कथा की प्रतीक्षा आप के अंत:करण में सहज उठती है तो मेरी व्यासपीठ 'भागवत' का आश्रय लेकर कहना चाहती है।

अजातपक्षा इव मातरं खगा:
स्तन्यं यथा वत्सतरा: क्षुधार्ता:।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।

'भागवत' में वृत्रासुर की स्तुति का एक श्लोक है। मेरा प्यारा श्लोक है। परमात्मा की अनुकंपा की परीक्षा नहीं की जाती है, समीक्षा की जाती है कि दु:ख के रूप में अनुग्रह कर रहा है वो कि सुख के रूप में कर रहा है। नहीं, नहीं! मंगल भवन से मंगल ही निकलता है, अमंगल निकल ही नहीं सकता।

मेरे श्रावक भाई-बहन, दूसरी कथा की प्रतीक्षा के बारे में पूछ रहे हो तो तीन रीत से प्रतीक्षा हो सकती है। 'अजातपक्षा', जिस पक्षी के पोटे-बच्चे जिसकी पांख अभी खुली नहीं है, उसकी माँ उसकी नीड़ में उसको अकेले को

छोड़कर दाने चुनने गई है। वो पक्षी के बच्चे जैसे अपनी माँ की प्रतीक्षा करे ऐसे वृत्रासुर, तू हरि की प्रतीक्षा करेगा। लेकिन यहां स्वार्थ है कि माँ आये, दाने दे। व्यासजी शुकदेवजी को दूसरा दृष्टांत देते हैं, 'स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।' दूसरा दृष्टांत, कैसे प्रतीक्षा करेंगे कथा की? जैसे एक दूध पीता बछड़ा, जिसको छोड़कर उसकी माँ जंगल में चारा चरने गई है। सायंकाल हुआ, रंभ रहा है बछड़ा, पुकार रहा है, 'मेरी माँ आयेगी, मेरी माँ आयेगी!' जैसे बछड़ा क्षुधातुर है और अपनी माँ की प्रतीक्षा करता है। लेकिन वहां

स्वार्थ है। वहां भोजन करना है इसीलिए माँ को याद कर रहा है। यहां पक्षी बच जाना चाहते हैं इसीलिए प्रतीक्षा कर रहा है। तीसरा हम सब को निकट पड़े ऐसा दृष्टांत है, 'प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा', जैसे एक प्रेमी स्त्री अपने पियु की प्रतीक्षा करे; एक नई-नई परिणीता ब्याहकर आई है, दोनों में बहुत प्रेम है, उस प्रेयसी अपने पति को देखने के लिए द्वार पर आकर देखती है इस तरह वृत्रासुर हरि को कहते हैं, मुझे तीन प्रकार से तेरी प्रतीक्षा रहे।

मेरे भाई-बहन, मुझे और आप को परमात्मा की प्रतीक्षा करने की तीन विधा अवधूत शुकदेवजी ने बताई है। इसमें से रुचि में जो सहज हो वो पकड़ लेना। बाप! कथा के लिए मैं भी प्रतीक्षारत रहता हूं; आप भी प्रतीक्षारत रहते हैं। जो सहज हो सो करना। अहल्यावाली पंक्ति मानी जाय, यद्यपि फिल्म की है-

बन के पत्थर हम खड़े थे सुनी-सुनी राह में,
हे हरि! हम तो ऐसे जड़ थे!
जी उठे हम जब से तेरी बांह आई बांह में,
छिनकर नैनों का काजल ना जा रे ना जा,
रुको कोई...ओ बसंती पवन पागल ना जा रे ना जा...

ये मुझे बहुत प्यारी पंक्ति है, बहुत प्यारी पंक्ति है। ईश्वर को कहने जैसी है, बुद्धपुरुष को कहने जैसी है।

याद कर तूने कहा था प्यार कर संसार से,
हम जो हारे दिल की बाजी ये तेरी भी हार है,
सुन ले क्या कहती है पायल,
ना जा रे ना जा, रुको कोई...

हे अरविंदाक्ष! हे कमलनयन! तेरी प्रतीक्षा हमारे जीवन में ऐसी आये। बाप! कथा को विराम दे दूं। हनुमानजी को बिदा दें इससे पूर्व मेरे भाई-बहन, नव दिवसीय रामकथा 'मानस-सहज', इसकी जो सात्त्विकता इकठ्ठी हो जाती है सत्संग की, उसको फल कहो, रस कहो, जो कहो; ये नव दिवसीय रामकथा का जो एक फल है, आओ, हम अर्पण कर दें। क्योटो के और इस स्वभाव की धारा में बहनेवाले सभी झेन मास्टरों के चरणों में ये मेरी नव दिवस की रामकथा मैं समर्पित कर रहा हूं। आप उसको कुबूल करियेगा। जितने झेन मास्टर्स हुए हैं उसको ये कथा समर्पित करता हूं।

मानस-मुशायरा

बच्चा बोला देखकर मस्जिद आलीशान,
अल्लाह तेरे एक को इतना बड़ा मकान?
–निदा फाज़ली

वो जहां भी रहेगा रोशनी फ़ैलाएगा।
चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।
–वसीम बरेलवी

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।
लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।
–दीक्षित दनकौरी

इन्हीं हाथों पे कालिख मल रहे हैं।
जिसकी बदौलत दीये जल रहे हैं।

•

तेरे जैसा कोई मिला ही नहीं।
कैसे मिलता, था ही नहीं।
–फ़ेहमी बदायूंनी

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी-सी।
महोब्बत करनेवालों की निगाहें कुछ और होती है।
– राज कौशिक

तेरे चरणों को पाना है।
फूलो जैसा बन जाना है।
तेरा प्याला मेरी माला,
अपना-अपना मयखाना है।
–मिलिन्द गढवी

इक्कीसवीं सदी में तपस्वियों की परिभाषा भी बदलनी पड़ेगी

शिशुविहार के उपलक्ष में आयोजित नागरिक सम्मान समारोह में मोरारिबापू का प्रासंगिक उद्‌बोधन

सबसे पहले दो बातों के लिए मैं क्षमा मांग लेता हूं। एक तो ये कि मैंने इस सात्त्विक समारंभ के लिए उन्तीस तारीख का समय दिया था, परन्तु अचानक कारण आ जाने से मैंने विनती की यदि तीस तारीख हो जाये तो मुझे ज्यादा अनुकूल होगा। और उसी क्षण मेरी विनती स्वीकार की गई। और मुझको आप लोगों ने निश्चिंत कर दिया इसके लिए में नमन करता हूं और क्षमा भी मांगता हूं। दूसरी बात आज की तारीख पर तीन बजे मुझे यहां पहुंचना था परंतु ज्यादातर क्या होता है? ज्यादातर नहीं, हरबार जो कार्यक्रम में ऐसे कसोकस रखे होते हैं और उसमें जो समय दिया होता है उस निर्धारित समय पर लगभग मैं निन्यानबे प्रतिशत पहुंचता हूं। परंतु वह कार्यक्रम बहुत बार विस्तृत भी होता है और लंबा भी होता है। और उसके कारण बहुत बार समय पालन नहीं होता। और अधिकतर मुझे अन्त में ही बोलना होता है इसलिए विलंब होता जाता है। परिणाम स्वरूप मैं यहां तीस मिनट देर से पहुंचा। पहले मैंने रास्ते में से ही फोन कर दिया था कि मुझे तीस मिनट की देर होगी। मुझे क्षमा कीजिएगा।

प्रतिवर्ष इस एक पुण्यकार्य में उपस्थित रहने का अवसर मिलता है इसे मैं अपनी प्रसन्नता मानता हूं। क्योंकि एक ऐसे व्यक्ति की स्मृति में ये सभी प्रवृत्तियां चल रही है और उसमें ये एक प्रवृत्ति परम आदरणीय लोकसेवक पूज्य मानदादा, उनकी स्मृति में यह कार्यक्रम आयोजित हो रहा है। वैसे तो अपने यहां 'पुण्यश्लोक' जैसा शब्द बहुत विशिष्ट पौराणिक पात्रों के लिए और बहुत से महानुभावों के लिए प्रयुक्त हुआ है। परंतु जैसे-जैसे काल गति करता है। एक के बाद एक नयी शताब्दियां आती जाती हैं। नया चिंतन, नया मनन, नयी चेतनाएं समाज में आ रही हैं तब इनमें भी थोड़ा-बहुत फेरफार होना चाहिए। इसलिए मुझे ऐसा भी लगता है कि मैं ये शब्द अगर प्रयुक्त करूं तो मुझको तो योग्य ही लगता है। परंतु आप भी कदाचित स्वीकार करेंगे। मैं ऐसा कहूंगा कि आज मैं पुण्यश्लोक मानदादा की चेतना को प्रणाम करने आया हूं।

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः।

ये सभी बातें अपने यहां हैं। इसकी अपेक्षा भी एक शब्द महान है अपने यहां और वो 'उत्तम श्लोक लीलया'। श्रीमद् भागवतजी में शुकदेवजी ने यह शब्दप्रयोग किया है।

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोक लीलया।
गृहीत चेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्।।

शुकदेवजी कहते हैं कि ' हे परीक्षित, मैं तो अवधूत, असंग तीनों गुणों से मुक्त एक चेतना हूं परंतु 'गृहीत चेता राजर्षे'। हे परीक्षित, इस एक व्यक्ति ने मेरा चित्त आकर्षित कर लिया है। और वो व्यक्ति है 'उत्तमश्लोक लीलया।' ये उत्तम श्लोक भगवान पूर्णावतार योगेश्वर श्रीकृष्ण। उन्हों ने मेरे चित्त को आकर्षित किया है। इसलिए श्लोक, पुण्यश्लोक, उत्तमश्लोक ऐसी एक पवित्र पदवी हम विशिष्ट क्षेत्र के महानुभावों को किसी संस्था द्वारा नहीं, हृदय और आत्मा के द्वारा देते रहेते हैं।

तो मुझे ऐसा लगता है कि हमारे लिए आज के समय में मानदादा हम सबके पुण्यश्लोक गिने जा सकते हैं। यद्यपि उनकी भाषा में श्लोकत्व की अपेक्षा लोकत्व अधिक था। वे बहुत श्लोकभाषा न बोलते थे। हम सब जानते हैं, उस श्लोकभाषा में उनकी सभ्यभाषा अथवा तो शिष्ट भाषा नहीं, वे तो स्पष्ट वादी थे। किसी भी मंच पर से उन्हें जो कहना होता वो चाहे कितना भी बड़ा आदमी हो वे उसकी रूबरू में बोलते थे। परंतु उनकी निश्छलता,पाकदिली, द्वेष मुक्त चित्त से जो वाणी निकलती थी उसे एक वक्ता के रूप में मेरे लिए पुण्यश्लोक कहूं तो ये तलगाजरडा को तो ठीक लगता है। आप सभी विचार कीजिएगा। ऐसे एक पुण्यश्लोक महानुभाव की स्मृति में शिशुविहार संस्था में प्रकाशभाई ने यहां एक नया सेन्टर खड़ा हुआ उसमें स्वयं समर्पण किया। वित्तजा सेवा की। सुधाबहन ने भी उसमें समर्पण किया है। और ये अपने-अपने क्षेत्र में रहकर इक्कीसवीं सदी के अपने सभी तपस्यिों ने वो भले साड़ी में हो, भले पेन्ट में हो, भले दुनिया के किसी भाग से आते हो परंतु इन्हें तपस्वी कहना ये अतिशयोक्ति नहीं है। साहब! तपस्वियों की परिभाषा भी बदलनी पड़ेगी। इनमें कोई धर्मशील है, कोई कर्मशील है, कोई विद्याशील है। इस शीलवंतता की वंदना भी होनी चाहिए। और शिशुविहार संस्था पुण्यश्लोक मानदादा की स्मृति में ये कार्य कर रही है इसका मुझे व्यक्तिगत तौर पर भी विशेष आनंद है।

हम किसीको कुछ देते हैं न साहब! देने के तो बहुत से ठिकाने होते हैं। पर आपको ऐसा लगे कि मुझे इसे घी देना है, तो गांव में एक समय में मैं भी जब तलगाजरडा के रामजी मंदिर में अपनी बाल्य उम्र में रामजी मंदिर की पूजा करता था, आरती उतारता था एक साधु के रूप में तब हम लोग जब आटा लेने जाते, आटे की भिक्षा लेने जाते तब हम लोग प्याली तंबूडी के साथ रखते, उसमें एरंडी के तेल के लिए, आठ दिन ठाकुर जी को आरती हो सके इसके लिए जिसके घर दुधारु पशु होते वे मखन देते। वो हर शनिवार को देगा ही ये साधु-ब्राह्मण को खबर थी। जिन्हों ने ये तंबूड़ी भिक्षा ली होगी उन सबको पता है।

तो घी कहां देना? घी यानी स्नेह। शीत पदार्थ को, तैली पदार्थ को, वो फिर घी हो, तेल हो अथवा तो कोई भी चिकनाहट भरा पदार्थ हो उसे हम संस्कृत में स्नेह कहते हैं। तो उसे कहां देना चाहिए? ये प्रकाशभाई, ये बहन या ये सभी ये जिनकी हमने वंदना की एवोर्ड के साथ; अपने-अपने क्षेत्रमें कुछ अपनी ऊर्जा, अपनी समझ, अपनी विद्या, अपनी उम्र ये सब कुछ दे रहे हैं। इसीलिए कोई महाराज भिक्षा के लिए आये और रामजी मंदिर में दीप प्रज्वलित करने के लिए घी कोई देता है तो वो सार्थक है! ठीक है। फिर महाराज स्वयं उसका हलवा बनाकर खा जाये ये उसका कर्म है! क्योंकि उन्हें दे दिया फिर उसका अधिकार होता है। उसका वो जो करना हो सो करे! परंतु उसने दिया, योग्य जगह दिया ऐसा मुझे लगता है।

दूसरा, प्रमाण में कम समयोचित आर्थिक रूप से भी बहुत अधिक खर्च न होता होगा। पर्यावरण की शुद्धि के लिए स्वाहा यानी 'इदं अग्नये न मम।' ये मेरे लिए नहीं है, अन्य के लिए है, ऐसा जो सात्त्विक यज्ञ होता है उसमें। मैं भी कहूंगा कि गांव का आदमी जीमने बैठता है तो नरिया में अग्नि मंगवाता है रोटी खाने से पहले। और उसमें अपनी थाली के साथ नरिया में अग्नि डाला हो और थोड़ी घी उसकी खीचडी में या भात में दे उसमें से एक बूंद घी वो नरिया की अग्नि में डालता है। यह भी एक यज्ञ है साहब! यहां किसी यज्ञभाव से डाला हुआ घी उसको भी हमें सार्थक मानना पड़ेगा यज्ञ में।

तीसरा उसकी अपेक्षा भी अधिक सार्थक ये है कि जिसकी झोंपडी में दीया नहीं जलता है, दीवाली आ रही है, दशहरे का आज उत्तम दिवस है। दशहरा का दिन अर्थात् क्या? हाल में ही मैं ये जवाहर मैदान के बगल से निकला। तीन खडे हैं। एक रावण होगा, कुम्भकर्ण होगा और तीसरा कौन होगा? कोई समाज का प्रतिनिधि होगा? तीसरा कौन होगा ये मुझे मालूम नहीं। रावण, कुंभकर्ण, हें...? मेघनाद ...मेधनाद... ओ.के. । हां, हां ठीक है। मैं 'रामायण' गाता हूं। मुझे ये मालूम नहीं है। क्योंकि मेरा स्वभाव ही उस तरफ नहीं गया है। किसी को जलाना, किसीको मारना ये मेरे स्वभाव में नहीं है। खैर! छोड़ो ये। सभी करते होंगे और उसमें भी साहब! रामलीला ग्राउन्ड दिल्ली का हो, उसमें जब रावण दहन का कार्यक्रम हो और उसमें राष्ट्रीय नेता मंच पर हो और वे सब धनुषबाण ले लेकर उसमें पटाखें फोड़कर वे जो मारते हैं वो बाण वैसे मारने की बजाय ऐसे मारने की जरूरत थी! पर ये खबर नहीं,कहां मारते हैं! ऐसे समारंभ ...! खैर एक परंपरा है। आसुरी वृत्ति के विजय को हम इस प्रकार मनाते हैं।

मैं वाल्मीकि 'रामायण' की एक बात करूंगा। दशहरा है इसलिए प्रासंगिक भी होगा। आपसे कहना है कि कभी हाथ में आये तो वाल्मीकि का 'युद्धकांड' पढ़ना साहब! रावण के साथ राम का घमासान युद्ध चल रहा है और रोज रावण अधिक से अधिक श्रमित होता जा रहा हैं। भगवान राम उसके रथ को छिन्नभिन्न करते हैं। रावण के शरीर में छेद-विच्छेद कर डालते हैं। खून की धारा गिरती हैं। मुकुट गिर जाता हैं। ऐसा भयंकर भीषण युद्ध चल रहा हैं। ऐसे में रामजी को ऐसा लगा कि आजके दिन रावण बहुत ही घायल है। बहुत ही परिश्रम हुआ हैं। उसके चेहरे पर बहुत ही थकान दिखती हैं। उस समय बिना पदत्राण राम अपने धनुष को विराम देते हैं। इस तरह भाथे से तीर काढ़ना था वो कार्यक्रम बंद करके हाथ में रखी धनुष को अपने कंधे पर स्थान दे पैदल रामजी रावण के पास गये हैं। और कहते हैं, हे दशानन! आज आप बहुत ही श्रमित हैं। आप बहुत ही थके हैं। आपके शरीर में मेरे बाणों के कारण बहुत ही घाव हो गये हैं। उस पीड़ा का मैं भी अनुभव कर सकता हूं। वह पीड़ा मुझको भी महसूस हो रही हैं। ऐसे समय मुझे ऐसा लगता है कि अब हम अभी युद्ध करें ये योग्य नहीं हैं। आप दूसरा रथ मंगवाकर घर जायें। मेरे पास नहीं है, नहीं तो मैं भेजता। मैं छोड़ जाता। गांव के बाहर खड़ा रहता, पिता के वचन के लिए। आपको घर मैं पहुंचाता। परंतु दूसरा रथ मंगवाकर आप अंदर बैठे। सारथि आपको घर ले जाये। आप औषधि कीजिए। कुछ थोड़ा भोजन करिए। विश्राम कीजिए और सुबह मैदान में आयेंगे तब राघवराम आपका स्वागत करने के लिए खड़ा हैं। इस तरह बात जब रावण ने सुनी साहब! तब रावण ऐसा बोला कि हे दशरथ तनय! रावण का वध कब होगा इसकी अभी मुझे खबर नहीं। पर आज रावणत्व का वध हो चुका हैं।

रावण के वध का प्रश्न नहीं है साहब! रावणत्व नष्ट होना चाहिए। कदाचित उसके प्रतीक के लिए हम ऐसा सब मानते हैं। जो हो सो। 'रामायण' के गायक के नाते तो ऐसे कार्यक्रम मे मुझे बुलाना चाहिए कि बापू, आप तीर उठाओ। पर मुझे बहुत जगह से कहा गया हैं। मेरे गुरु ने विवेक दिया है ऐसे विवेक से मैंने किसी भी तरह इस बात को टाल दिया है क्योंकि किसी को जलाना, किसी को मारना, किसी के उपर घाव करना ये मेरे स्वभाव में नहीं हैं। तो रावणत्व का नाश होता। वो जो रावण के शब्द हैं साहब! रघुनाथजी की आंखें भी भीगी हो गयी! आज मुझे लगता है कि राम की अपेक्षा रावण बड़ा दिखता हैं। आज थोड़ा ऊंचा लगता हैं।

ऐसी अद्‌भुत विचारधारा का दिन हैं। इस दिन जब ये सब हो रहा है तब दीवाली का पर्व आ रहा है तब घी कहां डालोगे? एक साधु मंदिर की आरती के लिए उगाहे उसमें डालिए। घी सार्थक हैं। एक देहाती आदमी जिसे श्लोक का यज्ञ नहीं आता, उसे कुछ नहीं आता फिर भी उसे ये खबर है कि अकेले नहीं खाया जाता तब नरिया में एक अग्नि की चिंगारी ले कर उसमें एक बूंद घी डालता है वहां घी का डालना सार्थक हैं। क्योंकि यज्ञ इसका अर्थ है बांटना। अन्य के लिए कुछ समर्पित होना। ऐसे भाव के लिए जितना जलदी हो उसकी अपेक्षा कम मात्रा में घी कदाचित होम हो तो शायद यज्ञ विचार के लिए सार्थक है उसकी अपेक्षा भी भूखे के पेट में घी जाये वो अधिक सार्थक हैं। कोई पीड़ित बहनें-माताएं जो आदिवासी हैं।

हाल ही में मैं आदिवासी विस्तार में घूम आया हूं। रोज रात को आदिवासी के घर मैंने रोटी की भीख मांगी हैं। मांगी हुई रोटी खाई हैं। उस समय मैंने देखा है कि इसके घर में दीया नहीं है। इसके घर घी तो है ही नहीं! तब मुझे लगता है कि इसके पेट में घी की आहुति जानी चाहिए। ये अधिक सार्थक होगी। हमें कहां देना है? प्रकाशभाई, किस जगह देना है? बहन, किस जगह देना है? आप की प्रशंसा करने के लिए मैं नहीं कहता। मेरा कोई बहुत परिचय नहीं है और न ही मुझे कोई काम ही हैं। पर आपने योग्य जगह दान दिया हैं। आपने जो घी की आहुति दी है। मानदादा जैसे पुण्यश्लोक व्यकित की चेतना से चल रही अनेक छोटी-बड़ी सद्‌प्रवृत्ति में आपका ये घी होम हुआ है इसका मैं साक्षी बना हूं इसका मुझे आनंद है। ये जरूरी हैं। नहीं तो हमें पता नहीं है कि कहां डाले? अपने गुजरात में एक गांव है, जहां घी चढ़ाया जाता हैं। कौन सी देवी या देव हैं! मेरा नाथ जाने! वो देवता वहां बैठा ही नहीं, निकल गया होगा! इतना घी सहन होगा? तुम्हारे माथे पर कोई दो घडा डालेगा तो भाग जाओगे तुम! आदमी भाग जायेगा। देव नहीं खड़ा रहेगा। परंतु खैर! चलता है यार कि घी की नदियां बहती हैं। जो है और ये परंपरा लोग छोड़ नहीं सकते! खैर, जो भी हो सो। परंतु कहां डालना?

मैं बहुत बार मजाक में भी कहता हूं कि एक व्यापारी घी का व्यापार करता था थोक का। गोडाउन में घी के लगभग हजारों डब्बे। और उसमें सरकार छापा डालती है कि जिसने संग्रह किया हो नियम विरुद्ध उसका घी जप्त करे। इसके बाद इसको तो उसने खबर कर दी। पहचान होगी! पहचान रखनी पड़ेगी! इसीसे किसी ने समाचार दिया होगा। इस कारण से व्यापारी ने तो सबको ट्रक भर भरके दे दिया। परंतु सौ डब्बे घी पड़ा रहा। फिर ये सौ डब्बा पकड़ा जायेगा तो उस पर से वापस फिर पूरी लिंक शुरू होगी और सारा ही पकड़ा जायेगा इसलिए उसने एक नौकर को कहा कि ये सौ डब्बा घी है उसे अपना खेत है यहां से तीन किलोमीटर दूर उसमें खड्डा करके तू रख आ। मतलब कि खड्डा करके सौ डब्बे घी तू छिपा दे। वो गया। बारह घण्टें काम किया और फिर आया कि शेठजी, खाली डब्बे कहां रखूं?शेठ ने कहा कि मेरे माथे पर फोड़! इस तरह से डाला हुआ घी निरर्थक है साहब! मैं तो यें मजाक कर रहा हूं। पर मैं तो अब तक मैंने मानदादा की संस्था के जो कार्यकर और उनके परिणामदायी जो सत्त्व-तत्त्व को देखा है इसलिए कह रहा हूं। काल खराब हैं। मानव का मन भी कालग्रस्त हुआ हैं। ऐसे समय में भविष्य के लिए हम उज्वल आशा रखें। परंतु अब तक मुझको जो दिख रहा है उसमें जिन-जिन ने घी होमा है उन सब ने योग्य जगह घी होम किया है, ऐसा मुझे कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं हैं।

तो यहां जो सम्मान हुआ। सम्मान किसका हो? इसमें सबको परोक्ष-अपरोक्ष पहचानता हूं। इन्हें देखता हूं तो पहचान जाता हूं। अपनी-अपनी संस्था में बैठकर प्रसिद्धि से मुक्त रहकर कैसा सुंदर कार्य हो रहा हैं! इन सभी प्रवृत्ति को मैं नमन करता हूं साहब! परंतु सम्मान किसका करना चाहिए? दशरथ यदि पुण्यश्लोक हैं तो उनका पुत्र राम उत्तमश्लोक हैं। तो उस उत्तमश्लोक राम ने रामराज्य की स्थापना के छह महिने बाद किसका सम्मान किया उसका मात्र नाम आपको बता दूं। फिर आप अपनी-अपनी बुद्धि से उसका विचार कीजिएगा। किसी न किसी रूप में हमारे ऐसे यज्ञ कार्य करनेवाले तपस्वी ऐसा कुछ कर रहे हैं। छह महिने के बाद अपने मित्रों को जब विदाई दी राम ने तब एक छोटा- सा सम्मान समारंभ आयोजित हुआ। उसमें भगवान राम ने सुग्रीव को बुलाया और भगवान ने सुग्रीव को, परमात्मा ने अपने हाथ से बुना हुआ वस्त्र 'सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए।' उसे जब मैं देखता हूं तब मुझको ऐसा लगता है कि तब भी खादी थी। परंतु तब बुनना था। कातना चाहिए। पर आज कातने का अर्थ अलग अर्थ में होता है। कोई बुनता है। सब जिसके हाथ जितना आता है उतना कात जाते हैं ऐसी परिस्थिति है! पर ये स्वाश्रय, खादी उन दिनों भी सूत कताता था। पर प्रभु ने अपने हाथ से अथवा भरत ने अपने हाथ से तपस्वी का जीवन जीते समय जो वस्त्र बुना था भगवान राम ने वो वस्त्र देकर सुग्रीव का सम्मान किया। वह वस्त्र न था, वह वृत्ति थी। वो वस्त्र न था, एक विचार था। और एक विचार के द्वारा उन्हों ने एक विषयी जीव का स्वागत किया कि दुनिया में चाहे जैसा आदमी हो परंतु सुसंग मिले तो वो कहां से कहां पहुंच सकता हैं! इस एक विचार का स्वागत किया।

विभीषण का स्वागत भगवान ने किया। परंतु विभीषण को तो क्या देते? उसको तो सोने की लंका मिल गई हैं। अब राम उसे क्या दे कर प्रसन्न करें? तो विभीषण को भगवान क्या दें? विभीषण का सम्मान करते समय राम ने ऐसा कहा कि विभीषण, तू लंका में रहकर अपना उत्तरदायित्व निभाते-निभाते अयोध्या की युद्ध न करने की प्रवृत्ति को याद रखना। तुझे सत्ता और सोना दोनों मिल गया है। ऐसे समय युद्धवृत्ति तुझ में नहीं आनी चाहिए। अयोध्या का अर्थ ही होता है, जहां युद्ध नहीं है उसका नाम अयोध्या। मैं बहुत जवाबदारीपूर्वक कहता हूं साहब कि अयोध्या में कभी कोई हथियार नहीं उठाया हैं। एक भी उदाहरण कोई मुझे बताये। हां, कोई मुझे बतायेगा तो एक साधु के रूप में मैं स्वीकार कर लूंगा। आभार मानूंगा। भरतजी ने हनुमानजी को बाण मारा परंतु अयोध्या से बाहर नंदिग्राम में। जब हनुमानजी संजीवनी लेकर जा रहे थे। भरत को लगा कि यह कोई असुर जा रहा है और शायद जहां राम है वहां उन्हें विक्षेप करेगा इसलिए उन्होंने बाण मारा है पर अयोध्या से बाहर। रामजी ने बाण का उपयोग किया है पर विश्वामित्र के साथ जब यज्ञ रक्षा के लिए निकले तब अयोध्या की सीमा से बाहर गये तब ताडका नाम की आसुरी वृत्ति को बाण मारा। अयोध्या में किसी ने हथियार उठाया ही नहीं साहब! हां, हाथ उठाया है अयोध्या में क्योंकि मंथरा को देखकर शत्रुघ्न महाराज ने थोड़ा एकाद थप्पड मार दिया है। इतने तक ही। बाकी विभीषण का सम्मान इस विचार से किया गया कि तुझे सत्ता मिली है, तुझे सोना मिला हैं। तेरे पास आज क्या नहीं हैं? इसलिए इन सबके नशे में तू अब हिंसा न करना। इस विचार से उसका सम्मान किया। फिर एक सम्मान किया अंगद का! बाली का पुत्र अंगद! उसे भगवान ने कुछ नहीं दिया। 'निज उर माल', उनके गले में फूल की माला थी वे अपनी माला उतार कर 'बालितनय पहिराइ।' बाली पुत्र अंगद को पहनाई। और प्रभुने कहा कि ये माला मैं जिसको पहना रहा हूं न उसकी पराजय नहीं होती। इसलिए ये माला पहने के बाद तेरी पराजय नहीं होती। परंतु इस विजय का अहंकार किसी दिन अपने पिता की तरह मत

रखना। इस तरह के अलग विचार से सम्मान किया।

चौथा सम्मानित पात्र है केवट। आदिवासी विस्तार में काम हो रहा है, अंतिम आदमी तक पहुंचने की जो प्रवृत्ति चल रही है। ऐसा एक अंतिम आदमी, उपेक्षित, वंचित समाज से बिलकुल तिरस्कृत ऐसा एक निषाद, एक केवट। भगवान उसे कुछ नहीं देते। साहब! अंतिम व्यक्ति को आप कपड़ा दो, देना चाहिए। उसका मकान बनवा दो। हमारा फ़र्ज़ हैं। उसे रोटी मिलनी चाहिए। हमें करना चाहिए। परंतु इन सबकी अपेक्षा उसे जरूरत है कोई उसका स्वीकार करे। कोई उसे अपनाये। हम और आप उसे कुछ देते हैं और फोटो खिंचवा कर निकल जाते हैं! ठीक है, अच्छा है। इससे भी लोगों को प्रेरणा मिलेगी। पर राम ने इस निषाद को, इस वंचित को, उपेक्षित को, इस दलित को समाज के आखिरी व्यक्ति को कुछ भी नहीं दिया। नहीं तो उसे कुछ देने की जरूरत थी। सुग्रीव को दिया। विभीषण को विचार दिया। पर ऐसे अंतिम आदमी को प्रभु ने कुछ नहीं दिया। उससे मांगा। इसका अर्थ ये है कि कोई आदमी इस समाज में अपने आप को इतना निम्न न समझे कि मैं किसी को कुछ नहीं दे सकता हूं। देने की वृत्ति जगे तो सबमें क्षमता है कि ईश्वर भी भीख मांग सकता है ऐसा हम दे सकते हैं। वृत्ति देने की होनी चाहिए।

मैं कथा में कहता हूं कि एक बावाजी और उनका चेला आटा मांगने गये। रोज उनका आटा मांगने का काम। गुरु चेले को संस्कार मिले इसलिए साथ ले जाता कि हमें ये धन्धा करना हैं। मेरे जाने के बाद तुझे आटा मांगना हैं। इसीलिए गुरु चेला दोनों गये। वे एक घर पर जाकर खड़े हुए। इसमें उस घर की पुत्रवधू किसी ऐसे साधु-संतों में कुछ मानती नहीं ऐसे स्वभाव की होगी। ये सब प्रमादी हैं, बावा-साधु कोई काम नहीं करते, मांग कर रोटी खाते हैं और पड़े रहते हैं, गांजा-चरस पीते हैं, ऐसा विचार। इसलिए उसने आटा के बदले राख जो चूल्हे में थी वो आटा जैसी ही थी उसे मुठ्ठी भरके महाराज की तुमडी में डाल दी। और वो गुरुदेव अस्सी वर्ष के। उन्होंने कहा, बेटा,पुत्रवती भव। उनके चेले का मगज फिरा कि गुरु, हमें आपकी आंख दिखानी चाहिए! अस्सी वर्ष हुआ है, या तो कालामोतिया है या मोतिया! आपको पता है, उसने आटा नहीं दिया। अबतक कितनी तुमड़ी भर गई थी उसमें राख डालकर सब बिगाड़ दिया! और आप 'पुत्रवती भव!' देखे बिना आशीर्वाद? उसने कहा कि लड़के, अस्सी वर्ष हुए उसमें मैं सत्तर वर्ष से आटा मांगता हूं। ऐसे चुटकी भरके कोई निकलता है न तो पांच फूट से पहचान लेता हूं कि उसकी चुटकी में गेहूं का आटा है, ज्वार का है, बाजरे का है? इतना मैं मांग-मांग कर निष्णात हो गया हूं। मुझे इतनी खबर नहीं होगी कि ये राख है या आटा? तो आपको पता था? कहा, हां, मुझे पता था। तो फिर राख डाली तो आशीर्वाद क्यों? तो बोला, राख तो राख। देने की आदत तो पड़ी है न! ये जो एक वृत्ति पैदा हुई है देना। ऊपर हाथ रखने का जो एक विचार प्रगट हुआ हैं। उस विचार का सम्मान राम यहां कर रहे हैं कि केवट, मैं तुझे कुछ नहीं दे सकता हूं। केवट ने स्वयं ही कहा है गंगा के किनारे जब राम मुद्रिका देने गये तब कि-

नाथ आजु मैं काह न पावा।

मुझे आज क्या नहीं मिला? एक दलित बोला है। मुझे आज सब मिल गया है महाराज! इसलिए मैं कुछ नहीं लूंगा। भगवान राम उसके पास से मांगे तब एक दलित ने कहा, मैं तुम्हें क्या दूं? तब प्रभु ने कहा, मित्र, तुम्हें समय हो न तब अयोध्या आकर मुझसे मिलते रहना। हां, तो सम्मान किसका हो समाज में? ऐसी वृत्ति, ऐसे विचार का सम्मान। पुण्यश्लोक मनुदादा की चेतना की स्मृति में प्रतिवर्ष ऐसा सम्मान आयोजित होता है और उसमें बीन-बीन कर जिन्होंने ऐसी सेवा अपने जीवन में अर्पित की है ऐसे दाता कि जो प्रसिद्धि से दूर रहकर वल्लभाचार्य भगवान की भाषा में कहूं तो कोई वित्तजा, कोई तनुजा, कोई मानसी जो सेवा करते हैं उनकी जो वंदना हो रही है उसका साक्षी बनने का आप मुझे अवसर प्रदान करते हो। और मैं प्रसन्न होता हूं कि मेरे पास आते हैं। और किसी दिन संस्था ने अपनी तारीख मुझे नहीं कही। मैंने जो तारीख दिया वो ले ली। इसमें कोई मेरी बड़ाई नहीं हैं। मेरी व्यस्तता ही इतनी है इसलिए मैं जो तारीख और समय दूं उसे स्वीकार लेते हैं इसका भी मुझे आनंद हैं। मैं फिर एक बार प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। मानदादा की उस पुण्यश्लोक चेतना को पाय लगता हूं। उनके अभी के वर्तमान अध्यक्ष महोदय और उनका पूरा परिवार जो इस पुण्य प्रवाह को, इस गतिशील प्रवाह को उसी तरह प्रवाहित रख रहा है इसकी भी प्रसन्नता व्यकत करता हूं। जिनका सम्मान हुआ उनकी सेवाशीलता को मैं नमन करता हूं। आप सभी को दशहरे की जलेबी और गांठिया की बधाई के साथ जय सीयाराम!

('शिशुविहार' भावनगर (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक ३०-०९-२०१७)

सांध्य-प्रस्तुति

ज़ाकिर हुसैन

नीलाद्रि कुमार

नृत्य-प्रस्तुति

संगीत-प्रस्तुति

नृत्य-प्रस्तुति

नगीनदास संघवी

真実 - 愛 - 同情

झेन कथाओं में, झेन की बातों में सहजता की बड़ी महिमा है। सावधानी की बहुत बड़ी महिमा है। मेरा राम है सहज। मेरा कृष्ण है सहज। कृष्ण तो राम से भी अधिक सहज है। और शिव इससे भी ज्यादा सहज है। तो राम है सहज, कृष्ण है सहज, शिव है सहज। राम मानी सत्य। सत्य सहज होना चाहिए। सत्य के ट्यूशन नहीं होते। उसके क्लासिस नहीं खोले जाते। और प्रेम भी सहज होना चाहिए। कृष्ण प्रेम है। राम सत्य है। और शिव करुणा है। करुणा सहज होनी चाहिए। झेन परंपरा का एक सूत्र है, करुणा आसक्तिमुक्त होनी चाहिए। करुणा करो, लेकिन जिस पर करुणा की है उस पर आसक्ति भी न रखो वरना बंध गये! झेन स्वाभाविक जो धारा है उसका एक सूत्र ये भी है, क्षण में जी लो। ये क्षण गई, गई! तुम्हारी नहीं रही। एक क्षण में वस्तु अतीत में जा रही है। नया आमंत्रण आ रहा है। लेकिन दोनों के बीच में एक क्षण है जिसमें जीने की बात झेन करते हैं। तो क्षण में जीने की स्वाभाविक धारा का नाम है झेन स्वभाव। हम असहज होते जा रहे हैं। वो ही अधर्म है, वो ही परधर्म है।

– मोरारिबापू

॥ जय सीयाराम ॥